वेद शिक्षक

पं० राजाराम

ओ३म्

आर्षग्रन्थावलि

वेद शिक्षा

प्रथम भाग

(इस में वेदों के शुद्ध उच्चारण की शिक्षा और स्वयं अर्थ जानने की शिक्षा देकर वेदों के मन्त्र और सूक्त अर्थ सहित दिये गये हैं)

सम्पादक पं० राजारामजी प्रोफ़ेसर

डी०ए०वी० कालेज, लाहौर।

उपसम्पादक

संस्कृतभूषण पं० शुचिव्रत शास्त्री बी०ए०

बाम्बे मैशीन प्रेस लाहौर में मैनेजर हरभगवान के अधिकार से छपा।

दिसम्बर १९२७

पहलीवार १०००]   [मूल्य ।=)

वेद शिक्षक

(श्रीगुरुदेव की वेदशाला में नये शिष्यों का प्रवेश)

गुरु शिष्य सम्वाद

एक शिष्य—भगवन् ! आप ने ऋषि-तर्पणी के दिन वेदाध्ययन पर जो उपदेश दिया और वेदाध्ययन के लिए हमारे जैसे कारोबारी लोगों को भी बुलावा दिया, उस ने हमारे हृदयों में वेदाध्ययन के लिए बहुत बड़ा उत्साह भर दिया है। क्या ऐसा हो सकता है कि हम भी मूल वेदों को पढ़ और समझ सकें। किसी टीका के सहारे पर नहीं, किन्तु मूल वेद से हमें वेद का अर्थ प्रतीत हो ?

गुरु—क्यों नहीं, निःसन्देह ऐसा हो सकता है। वेद आप के लिए ही प्रकाशित हुए हैं। आप में से कोई भी ऐसा नहीं, जिस में अपनी इस कामना को पूरा करने की पूरी योग्यता न हो।

शिष्य—पर कहा जाता है, कि वेद बहुत कठिन है। इधर हम उस के लिए समय बहुत थोड़ा दे सकते हैं। इसी लिए मन में प्रबल इच्छा के होते हुए भी अभी तक हमारा साहस नहीं पड़ा।

गुरु—"वेद बहुत कठिन है" ऐसा भय अपने हृदयों से निकाल दो। वेद कठिन नहीं, किन्तु वैदिकभाषा की शैली न जानने के कारण लोगों ने उस को कठिन मान रक्खा है। जिस ढंग से मैं कहता हूं, उस ढंग से अभ्यास करो, फिर देखो थोड़े ही दिनों में वेद के विषय में आप कैसी आश्चर्यजनक उन्नति कर लेते हैं। मैं भी जानता हूं कि आप समय बहुत थोड़ा दे सकते हैं। बहुत सा समय तो आप को कमाई के अर्पण करना पड़ता है। पर तुम्हारे सदृश जो सच्चे जिज्ञासु हैं, जिन के हृदयों में शुद्ध भावना है, और प्रबल इच्छा है, उन के लिए वेद अपना स्वरूप बहुत शीघ्र खोल देता है। अपने मन से संशय मेट दो। उत्साह और प्रेम के साथ आरम्भ करो।

शिष्य—भगवन्! हमारा आप पर पूरा भरोसा है। सो आप यदि ऐसा कहते हैं, तो इस से बढ़कर हमारे लिए क्या सौभाग्य होगा। आप आरम्भ कराइये। वेदाध्ययन के लिए हम में प्रेम है, और उत्साह है। अब यह आप के अधीन है, कि आप ऐसे ढंग से हमें शिक्षा दें, जिस से सुगम सुबोध और सरल उपायों से मिलता हुआ नया नया ज्ञान हमारे उत्साह को दिन पर दिन बढ़ाता रहे।

गुरु—शुभं भवतु, करो आरम्भ। जैसे सुगम सुबोध सरल ढंग से मुझे आप को वेद पढ़ाना है, वह वर्षों से मेरे मन में आ चुका हुआ है। सो उस के लिए लगातार परिश्रम कर के अति सरल ढंग पर पाठ निश्चित कर के ग्रन्थ-बद्ध कर लिए गये हैं। ये पाठावलियाँ जो इन ग्रन्थों में दी गई हैं, सरल से सरल ढंग है वेदाध्ययन का। यही ढंग आप के लिए, यही वेदारम्भ करने वाले ब्रह्मचारियों और कन्याओं के लिए और यही कारोबार को पुत्रों पर डाल कर स्वतन्त्र हुए वृद्धों के लिए सरल से सरल ढंग है वेदाध्ययन का। इस से बहुत शीघ्र ही मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों को स्वयं समझने की योग्यता प्राप्त होती है। भगवान् करें कि इस के प्रचार से वेद का प्रचार बढ़े और उस के प्रभाव से सर्वत्र सदाचार और सद् व्यवहार बढ़े।

ओं शुभं भूयादध्येत्रध्यापकास्याम्।

प्रथमः पाठः

ओ३म्—अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देव-
मृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ १॥

ओम्। अग्निम्। ईळे। पुरःऽहितम्। यज्ञस्य।
देवम्। ऋत्विजम्। होतारम्। रत्नऽधातमम्॥

उदाहरण के लिए ऋग्वेद के इस प्रथम मन्त्र को लो। ऊपर मन्त्रपाठ है, नीचे पदपाठ। मेरा पहला काम आप को शुद्ध उच्चारण करना सिखाना है, दूसरा मूल से अर्थ समझने के योग्य बना देना। शुद्ध उच्चारण से भाषा मधुर प्रतीत होती है, अर्थ स्पष्ट होता है। वेद के शुद्ध उच्चारण की रक्षा के लिए आचार्य्यों ने वेद के छै अङ्गों में से पहला अङ्ग शिक्षा रक्खा है।

देखो, हमारे नेत्रों के सामने वृष्टि हो रही है। यह दृश्य हमारे मन में उतरा। मन में इस का जो रूप है, वह एक विचार है। जब इस विचार को ज्यों का त्यों हम दूसरे के मन में उतारना चाहते हैं, तब हम उस विचार के प्रकाशक शब्द बोलते हैं। ये शब्द एक संकेत हैं उस विचार के प्रकाशित करने के। इस से अब दूसरे के मन में वही विचार ज्यों का त्यों उतर आता है। दूसरा उन शब्दों को एक पत्र पर लिख कर दूर भेज देता है। वहाँ एक और ही पुरुष पत्र को पढ़ता है। इस से हमारा विचार ज्यों का त्यों उस पुरुष के मन में उतर आता है, जिस से न हम ने कोई बात की और न हमारे निकट है। वह लेख एक

संकेत है हमारे उन शब्दों का, जो हम ने बोले थे। वह वही शब्द उसी रूप में बोलता है जो जैसे रूप में हम ने बोले थे और वही विचार उस के मन में उतर आता है जो हमारे मन में था। इसी प्रकार यह लिखित मन्त्र उस मन्त्र का संकेत है जो इस के द्रष्टा ऋषि ने उच्चारण किया था। इन संकेतों के पूर्ण ज्ञान से आप भी इस को उसी रूप में उच्चारण करने के योग्य होंगे, जिस रूप में ऋषि ने उच्चारा था और इन शब्दों की इस रचना में जिस अनुभव का संकेत है वही आप के हृदय में साक्षात् प्रकाशित होगा जो साक्षात् कर्ता ऋषि के हृदय में चमका था। लो पहले शुद्ध उच्चारण सीखो—

शिक्षा

१ वर्ण—वैदिक वर्ण ५२ हैं। इन में १३ स्वर ३९ व्यञ्जन हैं। उन के संकेत और नाम विशेष ये हैं—

(क) अ इ उ ऋ ऌ] ह्रस्व
आ ई ऊ ॠ] दीर्घ
ए ऐ ओ औ] संहित
} स्वर १३

(ख) क् ख् ग् घ् ङ् (कण्ठ्य)
च् छ् ज् झ् ञ् (तालव्य)
ट् ठ् ड् ळ् ढ् ळ्ह् ण् (मूर्धन्य)
त् थ् द् ध् न् (दन्त्य)
प् फ् ब् भ् म् (ओष्ठ्य)
य् र् ल् व् (अर्धस्वर)
श् ष् स् ह् (ऊष्मा)
अनुस्वार ं विसर्ग : जिह्वामूलीय ᳵ
उपध्मानीय ᳶ ।
} व्यञ्जन ३९

इन में से ळ् ळह् जिह्वामूलीय और उपध्मानीय ये चार वर्ण वेद में प्रयुक्त होते हैं लोक में नहीं । इन में से ळ् ळह् तो केवल ऋग्वेद में ही बोले जाते हैं अन्य वेदों में भी नहीं। इन में ळ् उस ड् के स्थान में बोला जाता है जो दो स्वरों के मध्य में हो, जैसे ईडे=ईळे । इसी प्रकार ळह् उस ढ् के स्थान में बोला जाता है जो दो स्वरों के मध्य में हो,जैसे मीढुषे=मीळ्हुषे । अन्यत्र ईड्यः, मीढ्वान्।उच्चारण ळ्का पञ्जाबी ड़ और ळह्का ढ़के समान होता है। जिह्वामूलीय का उच्चारण ख़् के समान और उपध्मानीय का फ़् के समान है। विसर्ग जो क् ख् से पूर्व हो वह जिह्वामूलीय और जो प् फ् से पूर्व हो वह उपध्मानीय बोला जाता है-जैसे 'विष्णो ᳵ कर्माणि' में जिह्वामूलीय और 'इन्द्र ᳵ पञ्च' में उपध्मानीय है। इन के स्थान शुद्ध विसर्ग भी बोले जा सकते हैं-विष्णोः कर्माणि, इन्द्रः पञ्च ।

स्वरों में से 'अ' का उच्चारण स्पष्ट रक्खो । बहुतेरे लोग राम को राम् बोलते हैं और कई परमेश्वर को प्रमेश्वर। व्यञ्जनों में ण् न् और श् ष् में भेद स्पष्ट रक्खो और ङ् ञ् ण् को स्पष्ट अपने निज रूप में उच्चारण करो।

द्वितीयः पाठः

३—वर्णों का मिलाप

(क) स्वर आदि में हो तो पूरा लिखा जाता है—अग्नि। स्वर से परे हो तो भी पूरा लिखा जाता है—वाय उक्थेभिः अन्यत्र अर्थात् व्यञ्जन से परे, मात्रा रूप में लिखा जाता है । व्यञ्जन और स्वर के मेल में 'अ' का चिन्ह यही है कि व्यञ्जन

नीचे से खण्डित नहीं रहता, जैसे क्+अ=क । शेष स्वरों के चिन्ह क्रमशः ये होते हैं-

स्वर	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ए	ऐ	ओ	औ
मात्रा	–	ा	ि	ी	ु	ू	ृ	ॄ	ॢ	े	ै	ो	ौ
उदाहरण	क् क	का	कि	की	कु	कू	कृ	कॄ	कॢ	के	कै	को	कौ

र् के साथ 'उ ऊ ऋ' इस प्रकार मिलते हैं 'रु रू ॠ'।

(ख) दो वा दो से अधिक व्यञ्जन जिन के मध्य में कोई व्यञ्जन न हो-संयुक्त कर के परले स्वर में मिलाए जाते हैं। इस संयोग में पहला व्यञ्जन पहले वा ऊपर और दूसरा आगे वा नीचे रहता है, जैसे 'अग्नि' में ग्नि=ग् न् इ और 'रत्न' में त्न=त् न् अ।

'क्ष, ज्ञ' ये दो संयोग ऐसे हैं जिन में पूर्वापर वर्ण स्पष्ट नहीं। सो स्मरण रक्खो क्ष्=क्+ष् है जैसे अक्षरे= अक्षरे और ज्ञ्=ज्+ञ् है जैसे यज्ञस्य=यज्ञस्य। क्ष का उच्चारण क्छ वा ख्य और ज्ञ का उच्चारण ग्य, द्न वा ज्य सब अशुद्ध हैं।

४–उच्चारण के सङ्केत।

(क) वर्णों की मात्रा—(उच्चारण काल का माप)—अ इ उ ऋ ऌ ये पाँच ह्रस्व स्वर हैं। इन के उच्चारण में जितना काल लगता है, वह एक मात्रा (माप) है। शेष आठ स्वर दीर्घ हैं। उनके उच्चारण में इस से दुगुना काल लगता है। उन की दो मात्रा हैं। यदि किसी स्वर को लटका कर बोलें तो उसे प्लुत कहते हैं। प्लुत की तीन मात्रा मानी जाती हैं। और इस बात के बोधन के लिए उस के आगे ३ का अङ्क दिया जाता है, जैसे

ओ३म्। (वस्तुतः लटक ३ मात्रा से अधिक भी हो जाती है, विशेषतः दूर से बुलाने में, पर सङ्केत सब के लिए एक है, जैसे दो से अधिक के लिए बहुवचन का)। व्यञ्जन की आधी मात्रा मानी जाती है, वह ह्रस्व से आधे काल में उच्चरित होजाता है।

(क) अनुनासिक—जब किसी स्वर को नासिका से बोलना अभिप्रेत हो. तो उस पर "ँ" यह चिन्ह दिया जाता है। उसे अनुनासिक कहते हैं, जैसे "देवाँ एह"। जिस स्वर पर यह चिन्ह हो वह केवल मुख से नहीं, किन्तु मुख और नासिका से उच्चरित होना चाहिये। स्वर सभी इस प्रकार बोले जा सकते हैं। व्यञ्जनों में केवल यँ वँ लँ ही अनुनासिक हो सकते हैं।

(ग) स्वर (accent)-स्वर के मुख्य भेद तीन हैं-उदात्त, अनुदात्त, स्वरित। जिस पर बल दिया जाए उसे उदात्त कहते हैं, जिस पर बल उतारा जाए, उसे स्वरित और जो उतरे हुए स्वर से बोला जाए उसे अनुदात्त कहते हैं। अनुदात्त का चिह्न नीचे सीधी रेखा, स्वरित का ऊपर आड़ी रेखा, उदात्त खाली होता है। जैसे 'अ॒ग्निमी॑ळे' में अ अनुदात्त ग्नि उदात्त मी स्वरित है। स्वरित से परे जितने अनुदात्त हों, वे सब एक स्वर से बोले जाते हैं, उन्हें एकश्रुति वा प्रचय कहते हैं। इस का भी कोई चिह्न नहीं होता, मी से परे 'ळे' एक श्रुति है। पहले पहल आप एकश्रुति और उदात्त में विवेक नहीं कर सकें गे, पर जब स्वर का विषय पूरा स्पष्ट करें गे तो फिर भूल नहीं होगी।

इति शिक्षा समाप्ता

तृतीयः पाठः

छन्दःशास्त्रम्

उच्चारण के विषय में दूसरी बात जानने योग्य यह है, कि मन्त्र जिस छन्द (Metre) में हो, उस के अनुसार सरस रूप में गाया जाए। छन्द के अनुसार ही उस में विराम (ठहराव) और संहिता (एक साथ उच्चारण) हो। इस से उच्चारण वा गान में मिठास आती है और मन पर पूरा प्रभाव पड़ता है। अत एव छन्दोऽनुसारी शुद्ध उच्चारण की रक्षा के लिये आचार्यों ने शिक्षा की नाईं छन्दःशास्त्र को भी वेद का अङ्ग माना है।

५—मुख्य वैदिक छन्द सात हैं—

गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्तिः, त्रिष्टुप्, जगती।

छन्दों की पहिचान अक्षरों की गिनती से होती है। शब्द का जितना भाग एक बार बोला जाए, उसे अक्षर कहते हैं। एक स्वर और उस के साथ उसी के सहारे पर बोला जाने वाला या बोले जाने वाले व्यञ्जन मिल कर एक अक्षर कहलाता है। 'अग्निमीळे' में 'अग् नि मी ळे' चारों अलग २ एक २ अक्षर हैं। स्वर अकेला भी पूरा अक्षर होता है, व्यञ्जन अकेला नहीं 'आ त्वा' में 'आ' एक अक्षर है।

(क) गायत्री छन्द २४ अक्षरों का होता है। उस के आठ आठ अक्षर के तीन पाद होते हैं। 'अग्निमीळे...' मन्त्र गायत्री छन्द में है। इसके २४ अक्षर हैं। तीन पाद हैं। एक २ पाद में आठ आठ अक्षर हैं।

शेष छहों छन्द चार चार अक्षर बढ़ाने से अगले अगले बन जाते हैं। २८ अक्षर का उष्णिक्, ३२ का अनुष्टुप्, ३६ का बृहती, ४० का पङ्क्ति, ४४ का त्रिष्टुप्, ४८ का जगती। इन सब के चार चार पाद होते हैं।

(ख) एक वा दो अक्षर बढ़ने से यही छन्द अतिच्छन्द और एक वा दो अक्षर घटने से यही विच्छन्द कहलाते हैं। उन में एक घटने से निचृत्, एक बढ़ने से भूरिक्, दो घटने से विराट्, दो बढ़ने से स्वराट् नामों से कहे जाते हैं जैसा कि—

छन्दांसि	विराट्	निचृत्	शुद्धा	भूरिक्	स्वराट्
गायत्री	२२	२३	२४	२५	२६
उष्णिक्	२६	२७	२८	२९	३०
अनुष्टुप्	३०	३१	३२	३३	३४
बृहती	३४	३५	३६	३७	३८
पङ्क्ति	३८	३९	४०	४१	४२
त्रिष्टुप्	४२	४३	४४	४५	४६
जगती	४६	४७	४८	४९	५०

अर्थात् २२ अक्षर का विराड् गायत्री, २३ का निचृद् गायत्री, २४ का शुद्धा गायत्री, २५ का भूरिक् गायत्री और २६ का स्वराड् गायत्री कहलाएगा। इसी प्रकार दूसरे भी जानो। अब २६ अक्षर का स्वराड् गायत्री माना जाए वा विराडुष्णिक् यह भेद आगे समझाएँगे।

इति छन्दःशास्त्रं समाप्तम्

चतुर्थः पाठः

व्याकरणम्

शुद्ध उच्चारण सीखने के पीछे अब आप को वेद का अर्थ समझने की शिक्षा दी जायगी। अर्थ ज्ञान में मुख्य अङ्ग व्याकरण है। व्याकरण से आप को वह शिक्षा मिलेगी जिस से एक शब्द का अर्थ जान लेने पर सहस्रों का अर्थ अपने आप समझ में आएगा और स्वयं नए अर्थों के विषय में अन्वर्थ नए शब्द प्रयोग करने की शक्ति आएगी।

६—जैसे थोड़े से मूल तत्त्वों से जगत् की सारी रचना हुई है इसी प्रकार थोड़े से मूल शब्दों से सारी शब्द-रचना हुई है। संस्कृत में मूल शब्द दो प्रकार के हैं प्रकृति और प्रत्यय। मूल अर्थ के वाचक शब्दों को प्रकृति और उस के विविध सम्बधों के द्योतक शब्दों को प्रत्यय कहते हैं।

७—प्रकृतियां तीन प्रकार की हैं नाम, धातु और अव्यय।

८—नाम वे हैं, जिनमें लिङ्ग वचन पाया जाए, और क्रिया के कारक बनने की योग्यता हो।

(क) संस्कृत में लिङ्ग तीन हैं, पुमान्, स्त्री, नपुंसक। पुरुषवाचक शब्द नियमतः पुमान्, स्त्रीवाचक नियमतः स्त्री, जिनमें स्त्री पुरुष का भेद नहीं, उन में लिङ्ग का निर्णय साथ साथ बतलाएंगे।

(ख) वचन तीन हैं एक, द्वि, बहु। एक के लिए एक-वचन, दो के लिए द्विवचन, दो से अधिक के लिए बहुवचन।

(ग) साक्षात् कारक छह हैं (१) कर्ता–क्रिया का करने वाला। (२) कर्म–किया जाने वाला। (३) करण–जिससे किया

जाए। (४) सम्प्रदान–जिसके लिए किया जाए। (५) अपादान–जिस से पृथक् होजाना पाया जाए। (६) अधिकरण–क्रिया का जो आधार हो। परम्पराकारक दो हैं–(१) सम्बन्ध जो किसी कारक के सम्बन्धी को बतलाए और (२) सम्बोधन जिससे कारक को सम्बोधित किया जाय।

९—कारक लिङ्ग और संख्या के द्योतन के लिए नाम से परे जो प्रत्यय आते हैं, उन्हें विभक्तियां कहते हैं, विभक्तियाँ सात हैं—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	भाषार्थ
प्रथमा	स्	औ, आ	अस्	०, ने
द्वितीया	अम्	,,	,,	०, को
तृतीया	आ	भ्याम्	भिस्	से, द्वारा
चतुर्थी	ए	,,	भ्यस्	के लिए
पञ्चमी	अस्	,,	,,	से
षष्ठी	,,	ओस्	आम्	का के की
सप्तमी	इ	,,	सु	में, पर

सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है।

संस्कृत में नाम और विभक्ति मिलकर एकरूप होजाते हैं। उन सारे रूपों को उस नाम की रूपावलि कहते हैं। इस एक रूप होने में, जिन में बहुत अधिक परिवर्तन होते हैं, उन को नियमों के अनुसार सिद्ध करके रूप बनाने की अपेक्षा रूपावलि कण्ठ कर लेना सरल मार्ग है। सो ऐसे कुछ आवश्यक शब्द पहले दे देते हैं। इन्हें इसी प्रकार कण्ठ कर लो।

१०—अ अन्तवाला शिव (श् इ व् अ=शिव)

शिव विशेषण शब्द है। विशेषण शब्द त्रिलिङ्ग होते हैं। विशेषण शब्दों का अन्त्य 'अ' स्त्रीलिङ्ग में दीर्घ हो जाता है। शिव—स्त्रीलिङ्ग शिवा।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	शिवः	शिवौ शिवा	शिवाः शिवासः
द्वितीया	शिवम्	,,	शिवान्
तृतीया	शिवेन शिवा	शिवाभ्याम्	शिवैः शिवेभिः
चतुर्थी	शिवाय	,,	शिवेभ्यः
पञ्चमी	शिवात्	,,	,,
षष्ठी	शिवस्य	शिवयोः	शिवानाम्
सप्तमी	शिवे	,,	शिवेषु
सम्बोधन	शिव	शिवौ शिवा	शिवाः शिवासः

नपुंसक शिव

प्र० द्वि०	शिवम्	शिवे	शिवानि शिवा

शेष सारा पुंवत् ।

स्त्री–शिवा

प्रथमा	शिवा	शिवे	शिवाः शिवासः
द्वितीया	शिवाम्	,,	शिवाः
तृतीया	शिवया शिवा	शिवाभ्याम्	शिवाभिः
चतुर्थी	शिवायै	,,	शिवाभ्यः
पञ्चमी	शिवायाः	,,	,,
षष्ठी	,,	शिवयोः	शिवानाम्
सप्तमी	शिवायाम्	,,	शिवासु
सम्बोधन	शिवे	शिवे	शिवाः

स्मरणीय-(१) यहां सर्वत्र प्रकृति का अन्त्य स्वर उदात्त है। सम्बोधन आद्युदात्त होता है सो उसका आदि स्वर उदात्त है*। (२) जिन के दो दो रूप दिये हैं, उन में से दूसरा रूप केवल वेद में आता है, लोक में नहीं। लोक में केवल पहला रूप ही आता है। (३) पुंलिङ्ग प्रथमा द्वितीया के द्विवचन, तृतीया के एक वचन और स्त्रीलिङ्ग प्रथमा के एक वचन के रूप शिवा एक समान हैं। पुं० स० एक वचन और स्त्री०, नपुं० प्र० द्वि० द्विव० शिवे समान हैं। पुं०प्र० द्वि०द्विव० शिवौ समान हैं। तृ० च० पं० द्विव० शिवाभ्याम् तीनों लिङ्गों में समान है। ष० स० द्विव० शिवयोः तीनों लिङ्गों में समान है। पुं० स्त्री० प्र० द्वि० सं० बहुव० शिवाः समान है। पु० न० च० पं० बहुव० शिवेभ्यः समान है। ष०बहुव० शिवाणाम् तीनों लिङ्गों में समान है। जो रूप समान हैं उनकी विभक्ति का निर्णय प्रकरण के अनुसार हो जाता है। समान रूपों पर ध्यान रहने से प्रकरणानुसार अर्थ करने में व्यामोह नहीं होगा। (४) सम्बोधन में है तो प्रथमा विभक्ति पर उसके एक वचन के रूप में बहुधा भेद होता है जैसे यहां भी है। द्विवचन बहुवचन में कहीं नहीं होता। हां सम्बोधन स्वर में आद्युदात्त होता है यह भेद द्विवचन बहुवचन में भी रहेगा, यदि नाम स्वयं आद्युदात्त न हो।

---

* यहां ऊपर रेखा उदात्त के अलग दिखलाने के लिये है।

पञ्चमः पाठः

सर्वनामानि।

जो नाम प्रधान (क्रियान्वयी) नामों के प्रतिनिधि होकर आते हैं वे सर्वनाम कहलाते हैं। उनके अकारान्त शब्दों के रूपों में से सर्व के पुंलिङ्ग प्रथमा का बहुवचन सर्वे पुं० नपुं० चतुर्थी का एक वचन सर्वस्मै, पञ्चमी का एक वचन सर्वस्मात्, षष्ठी का बहु वचन सर्वेषाम्, सप्तमी का एक वचन सर्वस्मिन्, शेष सारे रूप शिववत्। स्त्री में सर्वा होकर चतुर्थी का एक वचन सर्वस्यै, पञ्चमी षष्ठी का एक वचन सर्वस्याः, षष्ठी का बहुवचन सर्वासाम् सप्तमी का एक वचन सर्वस्याम् शेष सारे रूप शिवावत्। सर्वनामों का सम्बोधन नहीं होता।

(ख) किम्, यद् शब्दों के नपुंसक एक वचन में 'किम्, यद्, अन्य सारी विभक्तियों में क, य, होकर सर्ववत्। जैसे

	पुंलिङ्ग			स्त्रीलिङ्ग		
१	कः	कौ	के	का	के	काः
२	कम्	,,	कान्	काम्	,,	,,
३	केन	काभ्याम्	कैः,केभिः	कया	काभ्याम्	काभिः
४	कस्मै	,,	केभ्यः	कस्यै	,,	काभ्यः
५	कस्मात्	,,	,,	कस्याः	,,	,,
६	,,	कयोः	केषाम्	,,	कयोः	कासाम्
७	कस्मिन्	,,	केषु	कस्याम्	,,	कासु

इसी प्रकार यद्। नपुंसक १, २ किम् वा कद् के कानि, का। यद् ये यानि, या (ग) तद्-नपुंसक के एकवचन में तद्, अन्य सारी विभक्तियों में 'त' होकर सर्ववत् पुं० स्त्री प्रथमा के एकवचन में 'त' के स्थान 'स'।

	पुंलिङ्ग			स्त्रीलिङ्ग		
१—	सः	तौ, ता	ते	सा	ते	ताः
२—	तम्	,,	तान्	ताम्	,,	,,
३—	तेन, तेना	ताभ्याम्	तैः, तेभिः	तया	ताभ्याम्	ताभिः
४—	तस्मै	,,	तेभ्यः	तस्यै	,,	ताभ्यः
५—	तस्मात्	,,	,,	तस्याः	,,	,,
६—	तस्य	तयोः	तेषाम्	तस्याः	तयोः	तासाम्
७—	तस्मिन् सस्मिन्	,,	तेषु	तस्याम्	,,	तासु

नपुंसक १, २ तत् ते तानि, ता, शेष पुंवत्।

(घ) युष्मद् (=तू) अस्मद् (मैं) इनकी रूपावलि तीनों लिङ्गों में एक समान है द्वि० बहु० स्त्रीलिङ्ग 'युष्माः' भी आया है।

अस्मद्

१	अहम्	आवाम्, वाम्	वयम्
२	माम्	,,	अस्मान्
३	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
४	मह्यम्, मह्य	,,	अस्मभ्यम्
५	मद्	,, (आवत्)	अस्मद्
६	मम	आवयोः	अस्माकम्
७	मयि	,,	अस्मासु, अस्मे

युष्मद्

१	त्वम्	युवाम् युवम्	यूयम्
२	त्वाम्	,,	युष्मान्

३	त्वया त्वा	युवाभ्याम् युवभ्याम्	युष्माभिः
४	तुभ्यम्	,,	युष्मभ्यम्
५	त्वद्	,, (युवद्)	युष्मद्
६	तव	युवयोः	युष्माकम्
७	त्वयि त्वे	,,	युष्मासु युष्मे

टिप्पणी—वक्ष्यमाण विभक्तियों में अस्मद् युष्मद् के क्रमशः ये रूप भी प्रयुक्त होते हैं—द्वितीया का एकवचन 'मा, त्वा' चतुर्थी षष्ठी का एकवचन 'मे, ते' द्वितीया, चतुर्थी, षष्ठी का द्विवचन 'नौ, वाम्' और बहुवचन 'नस्, वस्'। ये सदा अनुदात्त रहते हैं और वाक्य के आदि में प्रयुक्त नहीं होते। उदा०—वह मेरा पुस्तक है—तत् मम पुस्तकम् वा तत् मे पुस्तकम्। ईश्वर मेरी रक्षा करे—ईश्वरः मां पातु वा मा पातु।

षष्ठः पाठः

जो नाम रूपावलियां आपने कण्ठ कर ली हैं, अब उन के सहारे पर छोटे छोटे वचन बनाना सिखलाते हैं। इन वचनों में शब्द वेद के हैं। सरलता लाने के लिये वचन की रचना बहुधा अपनी की गई है।

(क) देवम्=देव को। यज्ञस्य=यज्ञ का। यज्ञस्य देवम्=यज्ञ के देव को। देवस्य व्रतानि=देव के व्रत (नियम)। दूतः कः=दूत कौन है? अन्धाः जनाः=अन्धे लोग। सर्वे जनाः=सारे लोग। विश्वे देवाः=सारे देव। सः यज्ञः देवेषु=वह यज्ञ

देवों में । वरुणस्य व्रतेषु=वरुण के व्रतों में । मम पुरोहितम्=मेरे पुरोहित को । मयि पुरोहिते वेदाः=मुझ पुरोहित में वेद । युष्मभ्यम् फलानि=तुम्हारे लिये फल । वृक्षेभ्यः फलानि=वृक्षों से फल । ताभ्याम् रथाभ्याम्=उन दोनों रथों से वा के लिये वा से । मनुष्याणाम् गणाः=मनुष्यों के गण । तव उदरे=तेरे पेट में । रथौ=दो रथ । रथा=दो रथ । रथा=रथ से । प्रिया=दो प्यारे, दो प्यारों को, प्यारे से, प्यारी । पूर्वेभ्यः यजमानेभ्यः=पहले यजमानों के लिये, वा से । पूर्वेभिः ऋषिभिः=पहले ऋषियों से । नूतनैः ऋषिभिः=नये ऋषियों से । विश्वेषां रत्नानां पतिः=सारे रत्नों का पति । विश्वानि दुरितानि वा विश्वा दुरितानि=सारी दुर्गतियों, बुराइयों, त्रुटियों को ।

(ख) संस्कृत में अनुवाद करो—

तुम्हारे घरों पर । यज्ञों का पति वरुण । यजमान के सच्चे व्रत । तुम्हारे पुरोहित । पुरोहितों के लिये फल । उस के पेट में अन्न । तुम्हारे जीवन के लिये फल । पहले अन्धे । नये अन्धों के लिये रथ । धन का स्वामी ।

सप्तमः पाठः

सन्धि-प्रकरणम्

१२—वर्णों को अतीव निकट करके बोलने का नाम संहिता है । संहिता के प्रभाव से ध्वनियों में जो परिवर्तन होता है उसे सन्धि कहते हैं । वर्णों के स्वर और व्यञ्जन दो भेदों के कारण उन की सन्धि भी दो प्रकार की है । स्वर सन्धि और व्यञ्जन सन्धि ।

इन में से प्रत्येक सन्धि फिर दो प्रकार की है—बाह्य और आन्तर।

वाक्य वा समास में जो सन्धि होती है वह बाह्य, और जो प्रकृति प्रत्यय के मेल में होती है वह आन्तर है।

स्वर-सन्धिः

१३—परिभाषाएँ

(क) अव्यञ्जनीय स्वर अ आ

(ख) व्यञ्जनीय स्वर इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ

(ग) गुण अक्षर अ ए ओ अर् अल्

(घ) वृद्धि अक्षर आ ऐ औ आर् *

(ङ) अ आ आपस में, इ ई आपस में, उ ऊ आपस में और ऋ ॠ आपस में समान वा सवर्ण स्वर कहलाते हैं।

(च) जो किसी के स्थान में हो वह आदेश और जो बाहर से आ मिले वह आगम कहलाता है। यदि अपि=यद्यपि में 'इ' के स्थान 'य्' आदेश है और 'अ भवत्' में बाहर से आ मिला 'अ' आगम है।

१४—दो सवर्ण स्वर (ह्रस्व वा दीर्घ) मिल कर एक ही दीर्घ ध्वनि हो जाती है।

प्रसिद्ध उदाहरण—जैसे, विन्ध्य अचलः=विन्ध्याचलः। हिम आलयः=हिमालयः। तथा अपि=तथापि। सदा आनन्दः=सदानन्दः। कवि इन्द्रः=कवीन्द्रः। परि ईक्षा=परीक्षा। नदी इह=नदीह। देवी इतिहासः=देवीतिहासः। नदी ईशः=नदीशः (नदियों का मालिक समुद्र) गुरु उपदेशः=गुरूपदेशः। पितृ ऋणम्= पितृणम्। (पिता का वा पितरों का ऋण)।

---

* वृद्धि ऌ की आल् है पर प्रयोग कोई नहीं।

वेद में आए उदाहरण—यत्र अमृतस्य=यत्रामृतस्य। इन्द्र आ=इन्द्रा। त्वा अग्ने=त्वाग्ने। मयि इदम्=मयीदम्। सु उपायनः=सूपायनः। *

१५—'अ आ' से परे—

(क) व्यञ्जनीय स्वर हों तो दोनों मिल कर गुण होता है।

प्रसिद्ध उदाहरण—नर इन्द्रः=नरेन्द्रः। गण ईशः=गणेशः। महा ईश्वरः=महेश्वरः। धन ऊष्मा=धनोष्मा (धन की गर्मी)। राज ऋषिः=राजर्षिः। महा ऋषिः=महर्षिः।

(वेदे) तव इत्=तवेत् (तेरा ही)। आ इहि=एहि (आ)। आ उभा=ओभा। ऋ परे होने पर सन्धि नहीं होती—सप्तऋषीणाम्।

(ख) गुण स्वर (ए ओ) हों तो वृद्धि (ऐ औ) होती है।

प्रसिद्ध उदाहरण—तव एव=तवैव। सदा एव=सदैव। सा ओषधिः=सौषधिः।

(वेदे) आ एभिः=ऐभिः।

(ग) वृद्धि स्वर (ऐ औ) हों तो 'अ आ' की ध्वनि उन में लीन हो जाती है।

प्रसिद्ध उदाहरण—परम ऐश्वर्यम्=परमैश्वर्यम्। महा ऐश्वर्यम्=महैश्वर्यम्। परम औषधम्=परमौषधम्। महा औषधम्=महौषधम्।

(वेदे) इह एव=इहैव। सोमस्य औशिजः=सोमस्यौशिजः।

१६—असवर्ण स्वर परे हो तो इ ई, उ ऊ, ऋ क्रमशः य्, व्, र्, हो जाते हैं।

---

* ऋ ॠ के मेल का संहिताओं में कोई अवसर नहीं है।

प्रसिद्ध उदाहरण—यदि अपि=यद्यपि । सु आगतम्=स्वागतम् । पितृ अर्थम्=पित्रर्थम् ।

(वेदे) एतानि अन्यः=एतान्यन्यः । उरु अन्तरिक्षम्=उर्वन्तरिक्षम् ।

१७—पदान्त 'ए, ओ' से परे

(क) ह्रस्व 'अ' हो तो लीन हो जाता है, पर वेद में बहुधा टिका रहता है—अग्ने असि=अग्नेऽसि । तेजो असि=तेजोऽसि । पर 'महो अर्णः' (बड़े जल को) इत्यादि में लोप नहीं हुआ ।

(ख) 'अ' से भिन्न स्वर परे हो तो 'अय्, अव्' होकर 'य्' का नित्य लोप और 'व्' का केवल 'उ, ऊ' परे होने पर होता है—(वेदे) अग्ने इह=अग्न् अय् इह=अग्न इह । (हे अग्ने यहां) वायो उक्थेभिः=वाय् अव् उक्थेभिः=वाय उक्थेभिः (हे वायो भजनों से) । पर—वायो आयाहि=वायवायाहि (हे वायो आ) यहाँ न हुआ ।

१८—पदान्त 'ऐ औ' से परे स्वर हो तो 'आय्, आव्' होकर 'य्' का नित्य लोप और 'व्' का केवल 'उ ऊ' परे होने पर ही होता है—(वेदे) तस्मै इन्द्राय=तस्माय् इन्द्राय । तस्मा इन्द्राय (उस इन्द्र के लिये) । पादौ उच्येते=पादाव् उच्येते=पादा उच्येते (दोनों पाओं कहलाते हैं) । पर—मित्रावरुणौ=ऋतावृधौ=मित्रावरुणावृतावृधौ (हे मित्र वरुण ऋत के बढ़ाने वालो) में लोप न हुआ ।

———

प्रगृह्य

जिन में सन्धि कभी नहीं होती, उन को प्रगृह्य कहते हैं, ऐसे पदों के आगे वेद के पदपाठ में 'इति' शब्द लगा रहता है, जैसे 'हरी इति' ।

१९—द्विवचनान्त पद के अन्त्य 'ई, ऊ, ए' प्रगृह्य होते हैं—कवी इमौ=ये दो कवी । साधू इमौ=ये दो साधु । पचेते इमौ (वेदे-) रोदसी उभे ऋघायमाणम् ।

२०—'त्वे, युष्मे, अस्मे' प्रगृह्य होते हैं । त्वे इत् । अस्मे इन्द्रा बृहस्पती । युष्मे इत्था ।

२१—(क) 'उ' निपात प्रगृह्य होता है—भा उ अंशवे । पदपाठ में इस को 'ऊँ इति' लिखा जाता है ।

(ख) 'उ' जिन के अन्त में हो, वे भी प्रगृह्य होते हैं—आ+उ=ओ । उत उ= उतो । अथ उ=अथो । मा, उ=मो ।

आन्तर सन्धिः

बाह्य सन्धि के नियम आन्तर सन्धि में भी लगते हैं । विशेष नियम ये हैं—

२२—(क) स्वर वा य परे हो तो पूर्व अ का लोप होता है—कुल+ईन=कुलीन । अश्व य=अश्व्य । पच अन्ति पचन्ति । पच ए=पचे ।

(ख) पर सार्वधातुक इ ई परे हो तो नहीं होता—पच ईत्=पचेत् । पच इयुस्=पचेयुः ।

२३—स्वर परे हो तो—

(क) एकाक्षर प्रकृति के अन्त्य 'इ, ई' को इय् और 'उ ऊ' को उव् होता है। धी औ=धियौ । भू औ=भुवौ । अनेकाक्षर को नहीं होता—नदी औ=नद्यौ । वधू औ=वध्वौ । 'इ' धातु को य् ही होता है । इ अन्ति=यन्ति । इ अन्तु=यन्तु ।

(ख) इ ई, उ ऊ से पूर्व संयोग हो तो अनेकाक्षर प्रकृति को भी इय्, उव् ही होता है । चिक्षि अतुस्=चिक्षियतुः । शक्नु अन्ति=शक्नुवन्ति ।

(ग) परोक्ष भूत में 'उ ऊ' को नियमतः उव् होता है—यु यु उस्=युयुवुः । पु पू उस्=पुपुवुः ।

२४—इ, उ को दीर्घ होता है—

(क) यदि य परे हो—जि यते=जीयते । सु यते=सूयते ।

(ख) र्, व् से पूर्वले 'इ, उ' को दीर्घ होता है, यदि स्वर परे न हो—

गिर्=गीः । गिर्भ्याम्=गीर्भ्याम् । पुर्=पूः । पुर्भ्याम्=पूर्भ्याम् । दिव् यति=दीव्यति । स्वर परे होने पर न हुआ-गिरौ, पुरौ ।

(२५) एकाक्षर धातु के अन्त्य ऋ को होता है—

(क) स्वर परे हो तो रिय्-मृ अते=म्रियते ।

(ख) य परे हो तो रि-कृ यात्=क्रियात् ।

(ग) ऋ से पूर्व संयोग हो तो गुण-स्मृ यात्=स्मर्यात् ।

(घ) धातु के दीर्घ ॠ से परे स्वर हो तो इर्, व्यञ्जन हो तो ईर् होता है—पर पूर्व ओष्ठ्य वर्ण हो तो उर् ऊर् होता है—कॄ अति=किरति । कॄण=कीर्ण । पिपॄ अति=पिपुरति । पॄण=पूर्ण ।

२६—प्रत्यय का स्वर परे हो तो 'ए ऐ' को अय्, आय्

और स्वर वा य परे हो तो 'ओ औ' को अव् आव् होता है। आन्तर सन्धि में य्, व् का लोप नहीं होता—जे अति=जयति। रै ए=राये। भो अति=भवति। नौ औ=नावौ। गो य=गव्य। नौ य=नाव्य।

अष्टमः पाठः

धातुरूपावलिः

२७—धातु क्रिया के वाचक होते हैं और क्रिया का काल आदि जितलाने के लिये उन से परे दो प्रकार के प्रत्यय लगाये जाते हैं—परस्मैपद और आत्मनेपद। जिन धातुओं से परे केवल परस्मैपद प्रत्यय लगते हैं वे परस्मैपदी, जिन से केवल आत्मनेपद लगते हैं वे आत्मनेपदी और जिन से दोनों प्रकार के लगते हैं वे उभयपदी कहलाते हैं। परस्मैपदों के साथ धातु रूपावलि एक प्रकार से होती है और आत्मनेपदों के साथ दूसरे प्रकार से। फिर काल (Tense) और अवस्थाओं (Mood) के भेद से प्रत्ययों और रूपावलियों के कई प्रकार के भेद हो जाते हैं। सो नीचे लिखे क्रम से जानो—

२८—वर्तमान काल (Present tense)

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ति	तस्	अन्ति
मध्यम पुरुष	सि	थस्	थ, थन
उत्तम पुरुष	मि	वस्	मस्, मसि

टिप्पणी १—ति, सि, मि, जो बन्धनी के अन्दर रक्खे हैं वे अनुदात्त हैं। शेष सब आद्युदात्त हैं।

२९—स्वर के नियम—

(क) प्रकृति प्रायः अन्तोदात्त होती है और प्रत्यय प्रायः आद्युदात्त।

(ख) एक पद में एक ही उदात्त होता है। शेष अक्षर अनुदात्त हो जाते हैं।

(ग) पूर्वले स्वर से पिछला स्वर बलवान् होता है।

या+तस्=यातः। इस में 'या' अन्तोदात्त और तस्, आद्युदात्त था। जब दोनों मिले तो प्रत्ययस्वर ने प्रकृतिस्वर को बाध लिया। 'तः' उदात्त रहा। 'या' अनुदात्त हो गया। पर 'याति' में 'या' उदात्त बना रहा, क्योंकि प्रत्यय 'ति' अनुदात्त है।

३०—उदात्त और अनुदात्त मिल कर एक हो जाएँ, तो दोनों का एकादेश अक्षर उदात्त होता है। 'अन्ति' का 'अ' उदात्त है। जब 'या+अन्ति' मिले तो नियम १४ से 'या अन्ति=यान्ति' हुआ। यहां या उदात्त होगा। सो या=जाना, धातु की वर्तमान में रूपावलि यह होगी—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	याति	यातः	यान्ति
मध्यम पुरुष	यासि	याथः	याथ, याथन
उत्तम पुरुष	यामि	यावः	यामः, यामसि

इन में से उत्तम पुरुष का सम्बन्ध अस्मद् (मैं) शब्द से है। अस्मद् साथ प्रयुज्यमान हो तो—अहं यामि=मैं जाता हूं। आवां यावः=हम दोनों जाते हैं। वयं यामः वा यामसि=हम जाते हैं। अस्मद् साथ न जोड़ें तौ भी इन प्रयोगों का अर्थ यही होगा—यामि (मैं) जाता हूं। यावः (हम दोनों)

जाते हैं। यामः, यामसि (हम) जाते हैं। जब 'अहम्, आवाम्, वयम्' साथ हों तो उन्हें प्रयुज्यमान कहेंगे, साथ न लगे हों तो गम्यमान वा प्रतीयमान कहेंगे।

इसी प्रकार मध्यम पुरुष का युष्मद् के साथ सम्बन्ध होगा। चाहे प्रयुज्यमान हो, चाहे गम्यमान हो। जैसे—त्वं यासि वा यासि। युवां याथः वा याथः। यूयं याथ वा याथ, अथवा यूयं याथन वा याथन।

प्रथम पुरुष का सम्बन्ध युष्मद् अस्मद् से भिन्न हर एक नाम के साथ होता है। सः याति=वह जाता है। तौ यातः=वे दोनों जाते हैं। ते यान्ति=वे जाते हैं। कृष्णः याति=कृष्ण जाता है। रथौ यातः=दो रथ जाते हैं। देवाः यान्ति=देवता जाते हैं इत्यादि।

इसी प्रकार भा (चमकना)। पा (रक्षा करना)। वा (बहना)। स्ना (न्हाना) ख्या (कहना) के रूप जानो।

(क) भाषा में अनुवाद करो।

वाताः वान्ति।
गङ्गायां स्नामि।
यजमानान् पासि।
आकाशे ताराः भान्ति।
ब्राह्मणाः गृहान् यान्ति।
देवाः जनान् पान्ति।
शूरः रणाय याति।
रामः सभायां याति।
वयं यजमानान् पामसि।
यूयं सभासु भाथन।

(क) संस्कृत में अनुवाद करो।

यजमान रक्षा करते हैं।
वायु बहता है।
सूर्य चमकता है।
तुम यमुना में स्नान करते हो।
तुम दोनों घरों को जाते हो।
तुम पुत्रों की रक्षा करते हो।
चन्द्र आकाश में चमकता है।
तुम तालाब (ह्रद) में न्हाते हो।
कृष्ण राम के घर जाता है।

नवमः पाठः

३१—अनद्यतनभूत (Imperfetc tense)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	त्	ताम्	अन्, उस्
मध्यम पुरुष	स्	तम्	त, तन
उत्तम पुरुष	अम्	व	म

टिप्पणी १—पूर्व कहे वर्तमान काल के प्रत्ययों से ये प्रत्यय इस प्रकार निकले हैं—इ का लोप होकर ति का त्, अन्ति का अन्त्=अन्। सि का स्, मि का केवल म् न होकर अम्। स् का लोप होकर वस्=व। मस्=म। थ के स्थान त होकर थ=त। थन=तन। तस्=ताम् और थस्=तम् हुआ है। उस् स्वतन्त्र है, जो थोड़े ही धातुओं से परे आता है।

टिप्पणी २—इन में तीनों एकवचन त्, स्, अम् अनुदात्त हैं शेष सब आद्युदात्त।

३२—अनद्यतनभूत, सामान्यभूत और पणबन्ध में

(क) धातु से पूर्व उदात्त 'अ' आता है। भात्=अ भात्।

(ख) यदि धातु का आदि वर्ण स्वर हो, तो दोनों के स्थान वृद्धि एकादेश होता है। अ इच्छत्=ऐच्छत्।

३३—उस् परे हो तो प्रकृति के

(क) आ का लोप होता है 'अ या उस्=अ य् उस्=अयुः'।

(ख) अन्त्य स्वर को गुण होता है-अजुहु उस्=अजुहो उस्=अजुहवुः।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अयात्	अयाताम्	अयान्, अयुः
मध्यम पुरुष	अयाः	अयातम्	अयात, अयातन
उत्तम पुरुष	अयाम्	अयाव	अयाम

(क) भाषा में अनुवाद करो।

रथेन गृहानयात् ।

सूर्यस्य प्रकाशेन वृक्षाः अभान् ।

यजमानाः ह्रदेष्वस्नान् ।

यज्ञः देवेष्वयात् ।

अहं पर्वतमायम् ।

यजमानाः यज्ञेष्वयान् ।

(क) संस्कृत में अनुवाद करो।

मैं तुम्हारे घर गया ।

आकाश में सूर्य चमका ।

यजमान गङ्गा में न्हाए ।

तुम सभा में चमके ।

देवता यज्ञों में गये ।

चन्द्र उस के घर गया ।

दशमः पाठः

३४—अनुज्ञा, प्रेरणा और विधि

(क) अनुज्ञा (Imperative mood) । इस का उत्तम पुरुष नहीं होता, क्योंकि अनुज्ञा अपने लिए नहीं होती ।

प्रथम पुरुष	तु	ताम्	अन्तु
मध्यम पुरुष	हि, तात्	तम्	त, तन

'तु' अनुदात्त है । शेष सब आद्युदात्त ।

वर्तमान के इ को उ करने से ति=तु, अन्ति=अन्तु हुए । सि=हि । ताम्, त, त, तन अनद्यतनभूत के प्रत्यय हैं ।

प्रथम पुरुष	यातु	याताम्	यान्तु
मध्यम पुरुष	याहि यातात्	यातम्	यात, यातन

अर्थ—सः यातु–वह जाए वा उसे जाने दो। 'तात्' केवल आशीर्वाद में आता है । देव मा पातात् ।

(ख) प्रेरणा (Subjunctive mood)

प्रथम पुरुष	अति, अत्	अतस्	अन्
मध्यम पुरुष	असि, अस्	अथस्	अथ
उत्तम पुरुष	आनि, आ	आव	आम

सारे प्रत्यय अनुदात्त हैं। इन में प्रकृति अन्तोदात्त रहती है। प्रत्यय वर्तमान और अनद्यतन के मिले हुए हैं। 'अ' सब से पूर्व लगा है। व, म से पूर्व अ दीर्घ होकर आव, आम हुआ है। आनि में दीर्घ सादृश्य से है।

प्रथम पुरुष	याति, यात्	यातः	यान्
मध्यम पुरुष	यासि, याः	याथः	याथ
उत्तम पुरुष	यानि, या	याव	याम

(ग) विधि (Optative mood)

प्रथम पुरुष	यात्	याताम्	युस्
मध्यम पुरुष	यास्	यातम्	यात
उत्तम पुरुष	याम्	याव	याम

अनद्यतन के प्रत्ययों से पूर्व या उदात्त लग कर विधि के प्रत्यय बने हैं। या उस्=युस् (२५ क) या अम्=याम् (१४)।

प्रथम पुरुष	यायात्	यायाताम्	यायुः
मध्यम पुरुष	यायाः	यायातम्	यायात
उत्तम पुरुष	यायाम्	यायाव	यायाम

एकादशः पाठः

वर्तमान, अनद्यनतभूत, अनुज्ञा, प्रेरणा, विधि इन पांच वृत्तियों के परस्मैपद तो आप ने जान लिये, अब आत्मनेपद के प्रत्यय और प्रयोग समझो।

ऊपर प्रत्यय देकर नीचे आस् (बैठना) धातु के प्रयोग देते हैं। ध् परे होने पर स् का लोप होता है। आस् ध्वे=आध्वे।

३५—वर्तमान (Present) आत्मनेपद
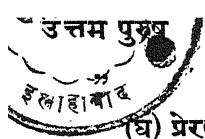
प्रथम पुरुष	ते, ए	आते	अते
,,	आस्ते, आसे	आसाते	आसते
मध्यम पुरुष	से	आथे	ध्वे
,,	आस्से	आसाथे	आध्वे
उत्तम पुरुष	ए	वहे	महे
,,	आसे	आस्वहे	आस्महे

(ख) अनद्यतनभूत (Imperfect) आ+आस्=आस्(३२ख)

प्रथम पुरुष	त	आताम्	अत
,,	आस्त	आसाताम्	आसत
मध्यम पुरुष	थास्	आथाम्	ध्वम्
,,	आस्थाः	आसाथाम्	आध्वम्
उत्तम पुरुष	इ	वहि	महि
,,	आसि	आस्वहि	आस्महि

(ग) अनुज्ञा (Imperative)

प्रथम पुरुष	ताम्	आताम्	अताम्
,,	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
मध्यम पुरुष	स्व	आथाम्	ध्वम्

	आस्स्व	आसाथाम्	आध्वम्
उत्तम पुरुष	इ	वहि	महि
	आसि	आस्वहि	आस्महि

(घ) प्रेरणा (Subjunctive)

प्रथम पुरुष	अते, अतै	ऐते	अन्ते
,,	आसते, आसतै	आसैते	आसन्ते
मध्यम पुरुष	असे, असै	ऐथे	अध्वे
,,	आससे, आससै	आसैथे	आसध्वे
उत्तम पुरुष	ऐ	आवहै	आमहै
,,	आसै	आसावहै	आसामहै

(ङ) विधि (Optative)

प्रथम पुरुष	ईत	ईयाताम्	ईरन्
,,	आसीत	आसीयाताम्	आसीरन्
मध्यम पुरुष	ईथास्	ईयाथाम्	ईध्वम्
,,	आसीथाः	आसीयाथाम्	आसीध्वम्
उत्तम पुरुष	ईय	ईवहि	ईमहि
,,	आसीय	आसीवहि	आसीमहि

यहां भी विधि के प्रत्यय अनद्यतनभूत के आत्मनेपद प्रत्ययों से पूर्व 'या' लग कर बने हैं। यह 'या' अनुदात्त है। उदात्त 'या, आ' अनुदात्त हो जाएं तो उन को ई हो जाता है, इस लिये 'या' को ई होकर ईत, ई आताम्=इयाताम्, सादृश्य की दृष्टि से ईयाताम् हुआ।

द्वादशः पाठः

अव्यय

२८—अव्यय उन को कहते हैं, जिन की रूपावलि नहीं होती। इन के तीन भेद हैं। उपसर्ग, निपात और स्वरादि।

(क) उपसर्ग धातुओं के साथ अन्वित होकर उन के प्रसिद्ध अर्थ को बदल देते हैं। उपसर्ग ये हैं—

अति—उलांघना—अतियन्ति=उलांघ जाते हैं।

अधि—ऊपर—अधिदर्शम्=ऊपर देखा है।

अनु—पीछे—अन्वविन्दः=पीछे पाया-ढूंढ कर पालिया।

अप—परे करना—अपबाधते=मार हटाता है।

अपि—समीप—अपियन्ति=समीप पहुंचते हैं-लीन हो जाते हैं।

अभि—सम्मुख—अभिगृणीहि=सम्मुख करके-वा लक्ष्य करके स्तुति कर।

अव—नीचे—अवसृज=नीचे छोड़ दे।

आ—उलट—आयाति=आता है।

उद्—ऊपर—उद्वहन्ति=ऊपर उठाते हैं।

उप—समीप—उपैमसि=समीप आते हैं।

दुर्—निन्दित, कठिन—(इस का प्रयोग कृदन्त शब्दों के साथ होता है) दुरितानि=दुर्गतियें।

नि—नीचे—निपाहि=नीचे रक्षा कर।

निर्—निकाल—निर्गच्छति=निकल जाता है।

परा—परे, आगे, दूर—परापतन्ति=उड़ कर दूर चले जाते हैं।

परि—चारों ओर—परिभूष=चारों ओर से सजा दे।
प्र—उत्कृष्ट—प्रचेतयति=उत्कृषता से जितलाता है।
प्रति—उलट—प्रत्यायम्=लौट आया हूं।
वि—विशेष—विराजति=विशेष कर चमकाता है—
वियन्ति=अलग होते हैं।
सम्—साथ, इकट्ठ—समजायथाः=साथ उत्पन्न हुआ है।
संगच्छध्वम्=इकट्ठे होवो।
सु—शोभन, सुगम—सुचोदय=शोभन रूप से वा
सुगमता से आगे बढ़ा।

ये २० उपसर्ग अधिक प्रसिद्ध हैं। इन में से 'अभि' अन्तोदात्त है और सब आद्युदात्त हैं।

उदाहरण—नक्षत्राणि विभान्ति=नक्षत्र विशेषता से चमकते हैं वा अलग अलग चमकते हैं। पूर्वाननुयाहि—बड़ों के पीछे चल। ते रथेन ग्रामं संयान्ति=वे रथ से ग्राम को इकट्ठे जाते हैं। रामः गृहान् प्रत्ययात्=राम अपने घरों की ओर लौट गया। देवः ग्रामात् आयात्=देव ग्राम से आया।

त्रयोदशः पाठः

३७—वर्तमान, अनद्यतनभूत, अनुज्ञा, प्रेरणा, विधि इन पांच वृत्तियों के प्रत्यय सार्वधातुक कहलाते हैं। शेष सारे आर्धधातुक। सार्वधातुक में धातु दस गणों में बट जाते हैं। भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि, चुरादि। वे दसों गण फिर दो वर्गों में विभक्त हैं उदात्तवर्ग और अनुदात्तवर्ग। भ्वादि, तुदादि, दिवादि, चुरादि ये चार गण उदात्तवर्ग में हैं, शेष छह अनुदात्तवर्ग में। ऊपर जो

उदाहरण के लिये 'या' आदि धातु दिखलाए हैं वे अनुदात्तवर्ग (अदादि गण) के हैं। पर उदात्तवर्ग के धातु बहुत अधिक हैं और उन की रूपावलि एक समान है, इस लिये पहले उन्हें समझो।

भ्वादिगण

३८—सार्वधातुक में भ्वादि धातु से परे 'अ' आता है और धातु का स्वर उदात्त रहता है। जैसे—पच् अ=पच। प उदात्त रहेगा।

३९—धातु स्वर उदात्त रहे तो (क) अन्त्य स्वर को गुण होता है (अर्थात् इ ई को ए, उ ऊ को ओ, ऋ ॠ को अर्) जि अ=जेअ=जय। नी अ=नेअ=नय। गु अ=गोअ=गव। भू अ=भोअ=भव। हृ अ=हर्अ=हर। तॄ अ=तर्अ=तर। (ख) उपान्त्य हो तो ह्रस्व को ही होता है-चित् अ=चेत् अ=चेत। बुध् अ=बोध। कृष् अ=कर्ष। क्लृप् अ=कल्प। पर कूज् अ=कूज यहां न हुआ क्योंकि ऊ दीर्घ है। निन्द् अ=निन्द यहां न हुआ, क्योंकि उपान्त्य न् है स्वर नहीं। इस प्रकार 'अ' समेत जो रूप बन जाते हैं उन के साथ सार्वधातुक प्रत्यय लगाए जाते हैं। जैसे पच+ति=पचति। जय+ति=जयति। नय+ति=नयति। बोध+ति=बोधति इत्यादि।

४०—प्रत्यय का म व परे होने पर 'अ' दीर्घ हो जाता है। जैसे पच+मि=पचामि। पच+वस्=पचावः। पच+मस्=पचामः। इसी प्रकार भवामि। भवावः। भवामः।

उदाहरण के लिये पच्=पकाना उभयपदी की रूपावलि देखो।

वर्तमाने परस्मैपदम्

प्रथम पुरुष	पचति	पचतः	पचन्ति

मध्यम पुरुष	पचसि	पचथः	पचथ, ०थन
उत्तम पुरुष	पचामि	पचावः	पचामः, ०मसि

सर्वत्र प का अ उदात्त है ।

अनद्यतनभूते परस्मैपदम्

प्रथम पुरुष	अपचत्	अपचताम्	अपचन्
मध्यम पुरुष	अपचः	अपचतम्	अपचत, ०तन
उत्तम पुरुष	अपचम्	अपचाव	अपचाम

आदि 'अ' जो आगम का है वह उदात्त होगा ।

अनुज्ञायां परस्मैपदम

प्रथम पुरुष	पचतु	पचताम्	पचन्तु
मध्यम पुरुष	पच, पचतात्	पचतम्	पचत

प्रेरणायां परस्मैपदम्

प्रथम पुरुष	पचाति, पचात्	पचातः	पचान्
मध्यम पुरुष	पचासि, पचाः	पचाथः	पचाथ
उत्तम पुरुष	पचानि, पचा	पचाव	पचाम

विधौ परस्मैपदम्

यहां धातु स्वर उदात्त रहेगा, इस लिये यात् आदि का या अनुदात्त होने से ई होकर और स्वर परे होने पर ई को इय् होकर प्रत्ययों के रूप ये हो जाएंगे। ईत् ईताम् इयुः ईः ईतम् ईत इयम् ईव ईम । इस लिये पच ईत्=पचेत् इत्यादि रूप होंगे।

प्रथम पुरुष	पचेत्	पचेताम्	पचेयुः
मध्यम पुरुष	पचेः	पचेतम्	पचेत
उत्तम पुरुष	पचेयम्	पचेव	पचेम

सर्वत्र प उदात्त रहेगा ।

वर्तमान आत्मनेपदम्

आत्मनेपद में जो आते, आथे, आताम्, आथाम्, प्रत्यय हैं इन के आ यहां उदात्त नहीं रहे, इस लिये इस को ई होकर ईते, ईथे, ईताम्, ईथाम् हो जाएंगे। फिर सन्धि होकर पचेते इत्यादि रूप होंगे। प्रथम का बहुवचन इन में अन्ते, अन्त, अन्ताम् होगा।

प्रथम पुरुष	पचते	पचेते	पचन्ते
मध्यम पुरुष	पचसे	पचेथे	पचध्वे
उत्तम पुरुष	पचे	पचावहे	पचामहे

अनद्यनतभूत आत्मनेपदम्

प्रथम पुरुष	अपचत	अपचेताम्	अपचन्त
मध्यम पुरुष	अपचथाः	अपचेथाम्	अपचध्वम्
उत्तम पुरुष	अपचे	अपचावहि	अपचामहि

अनुज्ञायामात्मनेपदम्

प्रथम पुरुष	पचताम्	पचेताम्	पचन्ताम्
मध्यम पुरुष	पचस्व	पचेथाम्	पचध्वम्

प्रेरणायामात्मनेपदम्

प्रथम पुरुष	पचाते, पचातै	पचैते	पचान्ते
मध्यम पुरुष	पचासे, पचासै	पचैथे	पचाध्वे
उत्तम पुरुष	पचै	पचावहै	पचामहै

विधावात्मनेपदम्

प्रथम पुरुष	पचेत	पचेयाताम्	पचेरन्
मध्यम पुरुष	पचेथाः	पचेयाथाम्	पचेध्वम्
उत्तम पुरुष	पचेय	पचेवहि	पचेमहि

भ्वादि गणी सब धातुओं की रूपावलि अपने अपने पद के अनुसार इसी प्रकार होती है।

४१—सार्वधातुक परे होने पर भ्वादि में विशेष कार्य ये होते हैं—

(क) गुह्—छिपाना के उ को दीर्घ होता है (न कि गुण) गूहति, ०ते। क्रम्—चलना के अ को परस्मैपद में दीर्घ होता है—क्रामति। आत्मनेपद में—क्रमते।

(ख) गम्—जाना, यम्—वश में रखना के म् को च्छ होता है। गच्छति। यच्छति।

(ग) पा—पीना, को पिब, स्था—ठहरना, को, तिष्ठ, सद्—बैठना, को सीद् होता है—पिबति, तिष्ठति, सीदति।

चतुर्दशः पाठः

तुदादिगण

४२—सार्वधातुक में तुदादिगण से परे 'अ' आता है। यह 'अ' उदात्त होता है। इस लिये धातु स्वर को गुण नहीं होता। तुद् अ=तुद। रूपावलि सारी पच की नाईं—तुदति, ०ते। अतुदत्, ०त। तुदतु, ०ताम्। तुदाति, ०ते। तुदेत्, ०त।

स्वरान्त धातुओं में आन्तर सन्धि के ये कार्य होते हैं—धी-धारणा-धियति। सु-प्रेरणा-सुवति (२३) मृ-मरना-म्रियते (२५ क) कॄ-बिखेरना-किरति (२५ घ)।

४३—(क) इन आठ धातुओं के स्वर से परे अनुनासिक का आगम होता है—कृत्-काटना, कृन्तति, तृप्-तृप्त होना, तृम्पति, पिश्-सजाना, पिंशति, मुच्-छोड़ना, मुञ्चति, लिप्-लीपना, लिम्पति, लुप्-काट देना, लुम्पति, विद्-पाना, विन्दति, सिच्-छिड़कना, सिञ्चति।

(ख) इष्–इच्छा करना, को इच्छ्, ऋ–जाना, को ऋच्छ्, होता है—इच्छति। ऋच्छति।

पञ्चदशः पाठः

दिवादिगण

४३—सार्वधातुक में दिवादिगण से परे 'य' आता है और धातुस्वर उदात्त रहता है। दिव्–चमकना–दिव् य ति–दीव्यति (२४, ख)।

४४—विशेष कार्य—श्रम्–थकना, तम्–मुरझाना, मद्–मत्त होना, के अ को दीर्घ होता है—श्राम्यति, ताम्यति, माद्यति।

षोडशः पाठः

विसर्ग-सन्धिः

४४—(क) सारे वर्णों के दो भेद हैं—अघोष और सघोष। वर्गों का प्रथम द्वितीय (क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ,) और श ष स अघोष हैं। शेष सारे वर्ण सघोष।

(ख) व्यञ्जनों के दो भेद इस प्रकार भी हैं—महाप्राण और अल्पप्राण। वर्गों का द्वितीय चतुर्थ (ख घ, छ झ, ठ ढ, थ ध, फ भ) और श ष स ह महाप्राण हैं शेष सारे व्यञ्जन अल्पप्राण।

४४—पदान्त स् और र् के स्थान विसर्ग हो जाते हैं—

शिव+स्=शिवः। पच+तस्=पचतः। पुनर्=पुनः। प्रातर्=प्रातः।

४५—अघोष वर्ण परे हों तो विसर्ग को :, ᳵ, ᳶ, श् ष् स् इस प्रकार होते हैं—

(क) क ख परे हों, तो विसर्ग वा जिह्वामूलीय—कः करोति वा कᳵकरोति (कौन करता है) कः खनति वा कᳵ खनति (कौन खोदता है)

(ख) प फ परे हों तो विसर्ग वा उपध्मानीय—कः पचति वा कᳶपचति। कः फलति वा कᳶफलति।

(ग) च छ परे हों तो श्, ट ठ परे हों तो ष्, त थ परे हों तो स् होता है—कः चरति=कश्चरति (कौन आचरण) करता है। कः छादति=कश्छादति (कौन ढांपता है) कः टीकाकारः=कष्टीकाकारः। कः ठक्कुरः=कष्ठकुरः। कः तनोति=कस्तनोति।

(घ) श ष स परे हों तो क्रमशः श् ष् स् होते हैं वा विसर्ग बने रहते हैं—कः शंसति वा कश्शंसति। कः षष्ठः वा कष्षष्ठः। कः सोमः वा कस्सोमः। प्रयोग बहुधा विसर्ग का ही होता है।

४६—सघोष (सारे स्वर और व्यञ्जनों में से वर्गों का तीसरा चौथा पाँचवाँ य र ल व ह) परे हों तो र् उ वा विसर्ग का लोप इन नियमों से होता है।

(क) जो विसर्ग र् से उत्पन्न हुए हैं उन को तो नियमतः र् ही होता है। पुनः अपि=पुनर् अपि=पुनरपि। द्वाः एषा= द्वारेषा। और जो स् से उत्पन्न हुए हैं, उन को र् लोप और उ इस प्रकार होते हैं—

(ख) विसर्ग से पूर्व यदि अ आ से भिन्न कोई स्वर हो तो विसर्ग को र् होता है—पूर्वेभिः ऋषिभि=पूर्वेभिर्ऋषिभिः

(विसर्ग इ से परे हैं और परे ऋ सघोष है) अग्निः होता=अग्नि-र्होता । गौः गच्छति=गौर्गच्छति ।

(ग) विसर्ग से पूर्व आ हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है—देवाः आगताः=देवा आगताः । देवाः गच्छन्ति=देवा गच्छन्ति ।

(घ) विसर्ग से पूर्व 'अ' और परे 'अ' भिन्न स्वर हो तो विसर्ग का लोप होता है—देवः इच्छति=देव इच्छति ।

(आ) परे अ वा सघोष व्यञ्जन हो तो विसर्ग को उ होता है—देवः अत्र=देव उ अत्र=देवो अत्र=देवोऽत्र (१७ क) देवः याति=देव उ याति=देवो याति ।

४७—अपवाद 'अ' भिन्न कोई भी वर्ण (स्वर वा व्यञ्जन) परे हो, तो 'सः, एषः' के विसर्ग का लोप हो जाता है—सः देवान्=स देवान् (वह देवों को) एषः गच्छति=एष गच्छति । 'अ' परे हो तो सः अवति=सोऽवति । एषः अवति=एषोऽवति । (४६ घ–आ) वाक्य के अन्त में हों तो विसर्ग बने रहते हैं अवति सः । अवति एषः ।

सप्तदशः पाठः

वेदाध्ययनम्

व्याकरण का विषय जो पढ़ चुके हो, इस को स्मरण रक्खो । इतने ही व्याकरण के भरोसे पर आप को वेदारम्भ करा देते हैं । साथ साथ व्याकरण का नया विषय भी बतलाते जाएँगे और पिछला पक्का कराते जाएँगे ।

१–विश्वानि देव सवितर् दुरितानि परा

सुव। यद् भद्रं तन् न आ सुव (ऋ० ५।८२।५)

व्याकरण—सू (तुदादि धातु परस्मैपद) चलाना, दौड़ाना, धकेलना, आगे को ठेलना, प्रेरणा करना, प्रवृत्त करना (Impell) जन्माना, उपजाना, बढ़ाना। सू अ=सुव (४२) सुव हि=सुव। अनुज्ञा मध्यम पु० एकवचन। इस वृत्ति का अर्थ जैसे अनुज्ञा है वैसे प्रार्थना भी है। सुव=ठेल दे, धकेल दे। परा आ उपसर्ग हैं। परा सुव=परे धकेल दे। आसुव=इधर (हमारी ओर) धकेल दे। सवितर्=हेप्रेरणे वाले-चलाने वाले। विश्वानि=सारे। दुरितानि=दुर्गतियों, त्रुटियों, पापों, दुःखों को (द्वितीया के बहुवचन) नः=हमारे लिए। अस्मद् चतुर्थी का एकवचन छोटा रूप-नः। नः आ=न आ विसर्ग लोप (४६ ग) तत् न=तन् न। त् को न् सन्धि।

सवितर् देव विश्वानि दुरितानि परासुव—हे विश्व के चलाने वाले देव सारे दुरितों (दुर्गतियों, त्रुटियों, पापों, दुःखों) को परे धकेल दीजिये।

यत् भद्रं तत् नः आसुव—जो भद्र (भलाई, सुगति, बल, ऐश्वर्य, प्रजा, पुत्र, पशु, धन) है, वह हमारे लिए इधर चला दीजिये।

२—इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे (यजु० ३६।८)

इन्द्र विश्व (सारे जगत्) का शासन करने वाला है (वह) हमारे दोपाये (मनुष्यों) के लिए कल्याणकारी हो (हमारे) चौपाये (पशुओं) के लिए कल्याणकारी हो।

व्याकरण—इन्द्रः वि०=इन्द्रो वि (४७ घ अ) राजति=

राज्-राज्य करना, शासन करना, (भ्वा० उ०) वर्तमान। शासन करना अर्थ वाले धातुओं के योग में कर्म में षष्ठी होती है। सो विश्वं राजति के स्थान विश्वस्य राजति हुआ।

शम्—कल्याण रूप वा कल्याणकारी अव्यय शब्द। द्विपदे=द्विपद् ए। चतुष्पदे=चतुष्पद् ए, चतुर्थी के एकवचन।

३—शं नो वातः पवताꣳशं नस्तपतु सूर्यः। शं नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु (यजु० ३६।१०)

वायु हमारे लिए कल्याणकारी होकर बहे, सूर्य हमारे लिए कल्याणकारी होकर तपे। देव (परमात्मा की दिव्य शक्ति रूप) मेघ हमारे लिए कल्याणकारी होकर गर्जता हुआ वर्षा करे।

व्याकरण—नः=अस्मभ्यम्। नः वातः=नो वातः (४७ घ अ) पवताम्-पव्-बहना (भ्वा० आ०) पवताꣳशम्। यजुर्वेदी र श ष स ह से पूर्व अनुस्वार को ꣳ पढ़ते हैं। ह्रस्व स्वर से परले को दीर्घ और दीर्घ स्वर से परले को ह्रस्व। वस्तुतः ह्रस्व से परे पूर्ण अनुस्वार और दीर्घ से परे अर्ध अनुस्वार है। तपतु-तप्-तपना (भ्वा० प०) वर्षतु-वृष्-बरसना (भ्वा० प०) अभि उपसर्ग।

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्यो अभयं नः पशुभ्यः (यजु३६।२२)

व्याकरण—यतः यतः=यतो यतः (४७ व आ) जहां जहाँ से। ईहसे–ईह् (भ्वा० आ) वर्तमान । सम् उपसर्ग। नः= अस्मान्। और नः=अस्माकम्=हमारे।

जहाँ जहाँ से तू चेष्टा करता है (अपनी महिमा दिखलाता है) वहां वहां से हमें अभय कर। कल्याण करो हमारी प्रजाओं (सन्तानों) के लिए और अभय हमारे पशुओं के लिए ।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि (यजु १९।९)

(तू) तेज है (अपना) तेज मेरे अन्दर डाल दे, (तू) वीरता (शौर्य बहादुरी) है, वीरता मेरे अन्दर डाल दे, (तू) बल है बल मेरे अन्दर डाल दे। (तू) ओजस् (सामर्थ्य, शक्ति, पराक्रम) है ओजस् मेरे अन्दर डाल दे। (तू) मन्यु (ज्ञान से चमकती हुई प्रचण्ड कोप शक्ति) है, मन्यु मुझ में डाल दे। (तू) सहस् (न दबने वाली दबा लेने वाली, न हारने वाली हरा देने वाली शक्ति) है, सहस् मुझ में डाल दे।

व्याकरण—तेजः असि=तेजो असि (४७ व आ)= तेजोऽसि (१७ क) तेजः मयि=तेजो मयि । धेह्योजोऽस्योजो मयि=धेहि ओजः असि ओजः मयि।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादभयं नो अस्तु । अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु (अथर्व १९। १५।५-६)

अन्तरिक्ष हमें अभय करे ये दोनों द्यौ और पृथिवी हमें अभय करें। अभय (हमें) पीछे से हो अभय सामने से हो ऊपर नीचे से अभय हमारे लिए हो। ५।

अभय मित्र से, अभय अमित्र से, अभय प्रत्यक्ष से अभय परोक्ष से (हो) अभय हमारे लिए रात हो, अभय दिन हो। सारी दिशाएं मेरी मित्र हो जाएं।

व्याकरण—'द्यावीपृथिवी उभे इमे' प्रगृह्य हैं इस लिए सन्धि न हुई (१९) नक्तम्=रात। दिवा=दिन (अव्ययपद) सर्वाः आशाः मम (४७ ग से) विसर्ग लोप होकर सर्वा आशा मम=सारी दिशाएं मेरी।

अष्टादशः पाठः

४८—(क) इ, उ अन्त वाले पुंलिङ्ग शब्दों की रूपावलि अग्नि, वायु। १, २ द्विव० में इ, उ दीर्घ। १ बहुव० इ उ को गुण। द्वितीया बहुवचन न् और इ, उ दीर्घ। षष्ठी बहुवचन

नाम् और इ, उ दीर्घ। ३ एकव० ना। ५, ६ एकव० में गुण और अस् का अलोप। ओस् में इ, उ को य्, व्।

१–अग्नि	अग्नी	अग्नयः	वायु	वायू	वायवः
२–अग्निम्	,,	अग्नीन्	वायुम्	,,	वायून्
३–अग्निना	अग्निभ्याम्	अग्निभिः	वायुना	वायुभ्याम्	वायुभिः
४–अग्नये	,,	अग्निभ्यः	वायवे	,,	वायुभ्यः
५–अग्नेः	,,	,,	वायोः	,,	,,
६– ,,	अग्न्योः	अग्नीनाम्	,,	वाय्वोः	वायूनाम्
७–अग्नौ	,,	अग्निषु	वायौ	,,	वायुषु
सं० अग्ने			वायो		

प्रधान प्रयोग यही हैं, किन्तु कुछ प्रयोग और भी हैं विशेषतः विशेषण शब्दों के जैसे—शुचि, मधु के ३ एकव० शुच्या, मध्वा। ७ एकव० शुच्यि, मध्वि। ६ एकव० मध्वः भी होते हैं।

व्यञ्जन-सन्धिः

स्मरणीय—पदान्त में ३९ व्यञ्जनों में से केवल ये आठ ही अन्त में आते हैं-क् ट् त् प् ङ् न् म् :। अर्थात् चवर्ग के बिना वर्गों का पहला और कवर्ग टवर्ग दोनों के बिना वर्गों का पाँचवाँ और विसर्ग। विसर्ग सन्धि पूर्व आचुकी है।

४९—(क) सघोष परे हो तो वर्गों के पहले (क् ट् त् प्) को तीसरा हो जाता है—सम्यक् उक्तम=सम्यगुक्तम् (ठीक कहा हुआ वा कहा गया) विराट् अत्र=विराडत्र। मित्रात् अभयम्=मित्राद्भयम्। अप्जः=अब्जः।

(ख) न् म् परे हों तो पाँचवाँ भी हो जाता है—सम्यक् नमति=सम्यग् नमति वा सम्यङ्नमति । प्राक् मुखः=पराग्मुखः वा पराङ्मुखः । विराट् महान्=विराड् महान् वा विराण् महान् । विराट् मित्रम्=विराड् मित्रम् वा विराण् मित्रम् । तत् मा=तद् मा वा तन्मा । पर प्रयोग पाँचवें के ही होते हैं तीसरा कदाचित् ही मिलता है ।

नवदशः पाठः

वेदाध्ययन

दृते दृ७ह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे (यजु ३६।८)

व्याकरण—दृते=हे दृढ़ बनाने वाले । दृंह मा=दृढ़ बना मुझे । चक्षुषा=दृष्टि से । चक्षुष् आ=चक्षुषा ३ एकव० ईक्ष्-देखना (भ्वा० आ) ईक्षन्ताम्-अनुज्ञा में प्र० पु० बहुव० ईक्षे-वर्तमान उत्तम एकव० ईक्षामहे बहुव० । मित्रस्याहं=मित्रस्य अहं ।

अर्थ—हे दृढ़ बनाने वाले ! मुझे (ऐसा) दृढ़ बना कि सब लोग मुझे मित्र की दृष्टि से देखें । मैं (स्वयं) सब लोगों को मित्र की दृष्टि से देखता हूं । (चाहता यह हूं कि) हम सब (आपस में) एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें ।

ऋग्वेदमण्डल १ सूक्त २५

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् ।

वेद नावः समुद्रियः ।७।

(वह) जो आकाश मार्ग से उड़ते हुए पक्षियों के खोज को जानता है। (तथा) समुद्र का अन्तरात्मा होकर जहाज़ के खोज को जानता है।

व्याकरण—वेदा=वेद। जो क्रियापद दो अक्षर का हो उस का अन्त्य अ छन्द की आवश्यकता के लिए दीर्घ कर दिया जाता है। वीनाम्=पक्षियों के 'वि=पक्षि' का ६ बहुव० अग्नि की नाईं। पतताम्=पतत् आम् षष्ठी बहुवचन। वीनाम का विशेषण। 'नावः' नौ=नौका, जहाज़। नौ=अस् नाव् अस्=नावः, ६ एकव०।

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते ।८।

(वह) अटल नियमों वाला बारह महीनों को उन की हर एक उपज के साथ जानता है और (उस को) जानता है जो अधिक उत्पन्न होता है (अर्थात् चान्द्र वर्ष को सौर वर्ष के साथ मिलाने के लिए प्रति तीसरे वर्ष एक मास अधिक मिलाया जाता है)

व्याकरण—मासः=मास् अस्-२ बहुव० प्रजावतः= प्रजावत् अस्, मासः का विशेषण। जायते=जन् (दि० आ०) जन्मना। इस को सार्वधातुक में 'जा' आदेश होता है।

वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते ।९।

(वह) फैले हुए ऊंचे और शक्ति वाले वायु के मार्ग को जानता है। और जानता है (उन को) जो (वायु मण्डल से) ऊपर रहते हैं।

व्याकरण—वर्तनिम्=मार्ग को, २ एकव० उरोः, उरु का ६ एकव० वातस्य का विशेषण। अध्यासते=अधि आसते=आस् (अदा० आ०) बैठना। प्र० पु० बहुवचन॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥१०॥

जिस के नियम अटल हैं, जिस के ज्ञान और कर्म पवित्र हैं, वह वरुण (अपनी सारी प्रजाओं पर) एकाधिपत्य राज्य करने के लिए सारी प्रजाओं के अन्दर बैठा है।

व्याकरण—नि। ससाद=निषसाद। पस्त्यासु (प्रजाओं के अन्दर) आ। आनिषसाद-आ बैठा है। क्रतुः=ज्ञान और कर्म। सुक्रतुः=पवित्र ज्ञान और कर्म वाला। धृतव्रतः और सुक्रतुः वरुणः के विशेषण हैं।

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभिपश्यति। कृतानि या च कर्त्वा॥११॥

यहाँ से (प्रजाओं के अन्दर बैठा हुआ) वह चेतनावान् सब अद्भुतों पर सीधी दृष्टि डालता है, जो अद्भुत किये गए हैं और जो करने हैं।

व्याकरण—विश्वानि अद्भुता=विश्वान्यद्भुता (इ को य्) २ बहु० चिकित्वान् अभि=चिकित्वाँ अभि।

त्रिंशः पाठः ।

व्यञ्जन सन्धिः ।

५०—तालव्य (च् छ् ज् श्) परे हों तो त् को तालव्य (च् ज्) होता है और परले श् को प्रायः छ् होता है। तत् चक्षुः= तच् चक्षुः=तच्चक्षुः । तत् जानाति=तज्जानाति । रोहित् श्यावा=रोहिच्छयावा ।

५१—स्वर परे हो तो न् को (क) दीर्घ आ से परे अनुनासिक होता है-देवान् एह=देवाँ एह। चिकित्वान् अभि= चिकित्वाँ अभि ।

(ख) दीर्घ ई ऊ ॠ से परे अनुनासिक और र् होता है- परिधीन् अति=परिधीँरति । अभीषून् इव=अभीषूँरिव । नॄन् अभि=नॄँरभि ।

५२—(क) च् छ् परे हो तो न् को ँ और श् होता है- अनुयाजान् च=अनुयाजाँश्च ।

(ख) त् परे हो तो ँस् होता है-आवदन् त्वम्=आव दँस्त्वम् ।

(ग) ल् परे हो तो लँ् होता है-जिगीवान् लक्षम्=जिगी- वाल्ँ लक्षम् ।

५३—(क) स्वर परे हो तो म् उसमें जा मिलता है- अग्निम् ईळे=अग्निमीळे ।

(ख) व्यञ्जन परे हो तो म् को अनुनासिक होता है- यम् यज्ञम्=यंयज्ञम् । मित्रम् हुवे=मित्रं हुवे ।

(ग) पर स्पर्श व्यञ्जन परे हो, तो अनुस्वार वा परले वर्ण का अनुनासिक होता है-भद्रम् करिष्यसि=भद्रं करिष्यसि वा भद्रङ्करिष्यसि । त्यम् चमसम्=त्यं चमसं वा त्यञ्चम सम् । भद्रम् न=भद्रं न वा भद्रन्न ।

आन्तरसन्धिः ।

५४—व्यञ्जनों में बाह्यसन्धि से आन्तरसन्धि का मोटा भेद यह है, कि आन्तर सन्धि में स्वर, अर्धस्वर और अनुनासिक परे होने पर अन्त्य व्यञ्जन ज्यों का त्यों टिका रहता है। अन्यत्र बाह्य सन्धि के कार्य होते हैं—

जैसे, मरुत्+औ=मरुतौ। युध्+इ=युधि। वच्+आनि=वचानि । वाच्+य=वाच्य । वच्+मि=वच्मि । अन्यत्र मरुत्+भ्याम्=मरुद्भ्याम् (४९ क)

५५—दन्त्यों को तालव्य और मूर्धन्य—

(क) च् ज् से परे न् को ञ् होता है-याच् ना=याञ्चा यज् नः=यज्ञः। श् से परे नहीं होता-प्रश्नः=प्रश्नः।

(ख) ट् से परे त् को ट् और ष् से परे त् थ् को ट् ठ् होता है-ईड्ते=ईट्ते=ईट्टे। द्विष्तः=द्विष्टः। द्विष्थः=द्विष्ठः।

(ग) ऋ ॠ र् ष् से परे (बीच में चाहे स्वर, कवर्ग पवर्ग य् व् ह् का व्यवधान भी हो) न् को ण् होता है यदि परे स्वर न् म् य् व् में से कोई हो—नृ+नाम्=नृणाम् । पितृ+नाम्=पितृणाम्। वर्+न=वर्ण। उष्+न=उष्ण । व्यवधान में जैसे नरेण (स्वर का व्यवधान) अर्केण (स्वर कवर्ग का व्यवधान) गर्भेण (स्वर, पवर्ग का व्यवधान) ब्रह्मण्यः (स्वर ह् पवर्ग स्वर का व्यवधान)। पर नहीं होता-अर्चनम् (चवर्ग का व्यवधान है) अर्धेन (तवर्ग का व्यवधान है) नरान् कुर्वन्ति (परे स्वरादि नहीं)।

(घ) वेद में उपसर्गस्थ निमित्त से परे धातु के न् को

भी बहुधा ण् होता है—परि नयति=परिणयति । परिनीत=परिणीत।

(ङ) अ आ से भिन्न स्वर, क् वा र् से परे (चाहे मध्य में अनुस्वार का व्यवधान भी हो) स् को ष् होता है यदि परे स्वर त्, थ्, न्, म्, य् व् में से कोई हो—हविस् आ=हविषा। वाच्सु=वाक्षु=वाक्षु । चतुर्सु=चतुर्षु। हवींषि। तिष्ठति । चक्षुस् मन्तः=चक्षुष्मन्तः। चक्षुस् यः=चक्षुष्यः। पर न हुआ-मांस (पूर्व आ है) उस्र (परे र् है)।

(च) वेद में कहीं कहीं बाह्य सन्धि में भी होता है—ऊसु नः=ऊषुणः।

एक विंशः पाठः-वेदाध्ययनम् (प्रार्थना)

बुद्धि की तीव्रता और भक्ति के लिए प्रार्थना।

इन्द्र मृळ मह्यं जीवातु मिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् । यत्किञ्चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम्

(ऋ० ६।४७।१०)

हे इन्द्र ! मेरे ऊपर दया करो (मुझे) जीता रखने की इच्छा करो। लोहे की धार की नाईं मेरी बुद्धि को प्रेरण करो (सूक्ष्म विषयों में धंस जाने वाली बना दो) तेरी कामना करने वाला मैं जो कुछ यह कहता हूं, उस को स्वीकार करो। मुझे देवता वाला (अर्थात् तुझ देव को सदा अपने अंग संग देखने वाला) बना दो।

व्याकरण—मृड=मृळ। मृड्-दयावान् होना कृपा दृष्टि रखना (तु०अनुज्ञा०मध्य० एक०) इष्-इच्छा करना (तु०प०अनु० मध्य०एक०) चुद्-प्रेरणा करना (चुरा०अनु०मध्य०एक०) वदामि-वद्-कहना (भ्वा० प० वर्तमान उत्त० एक०) जुषस्व, जुष्-सेवन करना, उपभोग करना, स्वीकार करना (तु० आ० मध्यम एक व०) अयसः=लोहे की। न=इव=जैसे (लोक में न निषेध के अर्थ में हैं। वेद में क्रिया के साथ अन्वित हुआ निषेधक होता है और नाम के साथ अन्वित हुआ 'इव' का अर्थ देता है) त्वायुः=तेरी कामना करने वाला। तत् जुषस्व=तज् जुषस्व।

बलं देहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि॥

हे इन्द्र हमारे शरीरों में बल दे, हमारे बैलों (पशुओं) में बल दे, हमारी सन्तान के लिए, सन्तान की सन्तान के लिए, जीवन के लिए बल दे। क्योंकि तू बल का देने वाला है।

प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्म उर्व्या विभाहि श्रोत्रं मे श्लोकय। अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टि मेरय (यजु० १४।८)

मेरे प्राण की रक्षा कर, मेरे अपान की रक्षा कर, मेरे व्यान की रक्षा कर, मेरे नेत्र को विस्तृत (दृष्टि) से चमका दे, मेरे श्रोत्र को यश से भर दे। जलों को पुष्ट बना, ओषधियों

को रस वाली बना, मनुष्यों की रक्षा कर, पशुओं की रक्षा कर, आकाश से चारों ओर वृष्टि को प्रेर दे ।

व्याकरण—मे=मम=मेरे । पाहि अपानं=पाह्यपानं (इ को य्) चक्षुः मे=चक्षुर्मे (विसर्ग को र्) मे उर्व्या=म उर्व्या (ए कोअय्, य् का लोप) पिन्व ओषधीः=पिन्वौषधीः (अ+ओ=औ) द्विपात् अव=द्विपाद् अव । पाहि, भाहि, श्लोकय, पिन्व, जिन्व, अव, आ+ईरय, ये क्रिया पद प्रार्थना मध्य० पु० १ व० के प्रयोग हैं ।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णम् । बृहस्पतिर्मे तद् दधातु । शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः (यजु० ३६।२)

जो मेरे नेत्र का छिद्र है, हृदय का और मन का गहरा गढ़ा है, मेरे उस (गढ़े) को बृहस्पति भर देवे। वह जो भुवन (ब्रह्माण्ड) का पति है वह हमारे लिए कल्याणकारी हो ।

द्वाविंशः पाठः ।

व्याकरणम् ।

५६—स्त्रीलिङ्ग ई अन्तवाला देवी ऊ अन्तवाला तनू ।

१	देवी	देवी	देवीः	तनूः	तन्वा	तन्वः
२	देवीम्	,,	,,	तन्वम्	,,	,,
३	देव्या	देवीभ्याम्	देवीभिः	तन्वा	तनूभ्याम्	तनूभिः
४	देव्यै	,,	देवीभ्यः	तन्वे	,,	तनूभ्यः
५	देव्याः	,,	,,	तन्वः	,,	,,
६	,,	देव्योः	देवीनाम्	,,	तन्वोः	तनूनाम्

७	देव्याम्	,,	देवीषु	तन्वि-तनू	,,	तनूषु
सं०	देवि	देवी	देवीः	सं० तनु		

५७—इकारान्त स्त्री लिङ्ग शुचि।

१	शुचिः	शुची	शुचयः
२	शुचिम्	,,	शुचीः
३	शुच्या, शुची, शुचि	शुचिभ्याम्	शुचिभिः
४	शुच्ये	,,	शुचिभ्यः
५	शुचेः	,,	,,
६	शुचेः	शुच्योः	शुचीनाम्
७	शुचा, शुचौ	,,	,,
सं०	शुचे		

५८—आर्धधातुक प्रत्यय।

धातुओं से परे सार्वधातुक प्रत्यय दिखला चुके हैं। उन से भिन्न प्रत्यय आर्धधातुक कहलाते हैं।

आर्ध धातुक में पहले भविष्यत्काल के रूप समझो। वर्तमान प्रत्ययों से पूर्व स्य लगाने से भविष्यत् के प्रत्यय बन जाते हैं। जैसे—

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
१	स्यति	स्यतस्	स्यन्ति	स्यते	स्येते	स्यन्ते
२	स्यसि	स्यथस्	स्यथ	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
३	स्यामि	स्यावस्	स्यामस्	स्ये	स्यावहे	स्यावहे

इन प्रत्ययों के परे होने पर धातु को गुण होता है—हु स्यति=होस्यति=होष्यति। (५५ ङ)

५९—(क) व्यञ्जनादि आर्धधातुक परे हो तो धातु के अन्त

में 'इ' लग जाता है। जैसे पठ्+स्यति=पठ् इस्यति=पठिष्यति।

(ख) कईयों से नहीं लगता जैसे दा+स्यति=दास्यति। जिन से परे 'इ' लगता है उनको सेट् (इ वाले) कहते हैं जिनसे नहीं लगता, उन को अनिट् (न इ वाले) कहते हैं।

६०—सेट् अनिट् का स्थूल नियम तो यह है।

(क) स्वरान्त सब अनिट्। जैसे—दास्यति। जेष्यति। होष्यति।

(ख) पर दीर्घ ऊ वा दीर्घ ॠ जिनके अन्त में हो वे सेट् होते हैं। जैसे—भू+स्यति=भो इस्यति=भविष्यति। तॄ+स्यति=तर्। इस्यति=तरिष्यति।

(ग) ह्रस्व ऋ जिस के अन्त में हो, वह भविष्यत् में ही सेट् होता है। जैसे कृ स्यति=कर् इस्यति=करिष्यति, अन्यत्र कृतृ=कर्तृ।

(घ) व्यञ्जनान्त धातुओं में १०२ अनिट् हैं शेष सब सेट् हैं।

अनिट् सेट् का पूरा निश्चय अभ्यास से हो जाता है।

अनिट् नी और (भविष्यत् में) सेट् कृ की रूपावलिः।

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
१—	नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
२—	नेष्यसि	नेष्यथः	नेष्यथ	नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे
३—	नेष्यामि	नेष्यावः	नेष्यामः	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे
१—	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
२—	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
३—	करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

कृत् प्रत्यय।

६१—भाषा में जैसे लड़ धातु से लड़ना, लड़ाई, लड़ाका, इत्यादि नाम बनते हैं इसी प्रकार संस्कृत में युध् धातु से युध्, युद्ध, योद्धा इत्यादि नाम बनते हैं। जिन प्रत्ययों के लगने से धातुओं से नाम बनते हैं उन्हें कृत् प्रत्यय कहते हैं। ये भिन्न भिन्न अर्थों में आते हैं।

६२—कर्त्ता अर्थ में, ०, अ, इन्, अक, तृ आते हैं।

(क) जैसे सद् बैठना से–सद् (बैठने वाला) सभासद् (सभा में बैठने वाला) नुद् (धकेलना) से–नुद् धकेलने वाला, तमोनुद् अन्धेरे के धकेलने वाला। भू होना से, भू–होने वाला स्वयम्भू=स्वयं होने वाला, परिभू=चारों ओर होने वाला।

जिस धातु के अन्त में ह्रस्व स्वर हो उसके अन्त में त् का आगम हो जाता है जैसे–जि जीतना–से, जित् (जीतने वाला) विश्वजित् (विश्व का जीतने वाला) कृ–करना, से–कृत् (करने वाला) कर्मकृत् (कर्म करने वाला)।

(ख) (१) अ–जैसे–पच्–पकाना से पच (पकाने वाला) नद् गर्जना से नद (गर्जने वाला) नदी (गर्जने वाली)। बुध् जानना से बुध (जानने वाला) क्षिप–फेंकना, से क्षिप (फेंकने वाला) (२) अ परे होने पर कुछ धातुओं को गुण भी हो जाता है–दिव् चमकना, से–देव (चमकने वाला) (३) कर्म उपपद हो तो धातु स्वर को प्रायः वृद्धि भी हो जाती है–लोह+कृ+अ=लोह कार (लोहा बनाने वाला–लुहार) सुवर्ण+कृ+अ=सुवर्णकार (सोना बनाने वाला–सुनार)। पर–वचनकरः (कहा करने वाला) में वृद्धि न हुई।

(ग) इन् परे होने पर धातु अकेला हो तो उसको वृद्धि होती है—ग्रह-पकड़ना, ग्राहिन्। स्था ठहरना, स्थायिन्। कर्म उपपद हो तो गुण होता है-सोम+वि+क्री, खरीदना से, सोमविक्रयिन्। उष्ण+भुज्+इन्=उष्णभोजिन्।

(घ) अक-अक परे होने पर वृद्धि होती है-नी-ले जाना मार्ग पर चलाना, से-नी+अक=नै अक=नायक। पू, पवित्र करना, से-पू अक=पौ अक=पावक। कृ+अक=कार् अक= कारक। पच्+अक=पाचक। उप+दिश्+अक=उपदेशक।

(ङ) तृ-तृ परे होने पर गुण होता है और सेट् धातुओं से परे इ भी लगजाता है। दा+तृ=दातृ। कृ+तृ=कर्तृ। पठ्+ तृ=पठितृ।

अक और तृ सभी धातुओं से आते हैं।

६३—इन कृत् प्रत्ययों के लगने से जो नाम बनते हैं उनमें से त्, द् अन्त वालों की रूपावलि इस प्रकार होगी। स्वर परे होने पर तो व्यञ्जन उस स्वर में जा मिलता है। जैसे जित्+औ=जितौ और नुद्+औ=नुदौ। वर्गों के पहले दूसरे तीसरे चौथे को पदान्त में स् परे होने पर पहला और भ् परे होने पर तीसरा होता है। जैसे जित्+स्=जित्। नुद्+स्=नुत्। युध्+स्= युत्। जित्+सु=जित्सु। नुद्+सु=नुत्सु। युध्सु=युत्सु। जित्+भिस्=जिद्भिः। नुद् भिस्=नुद् भिः। युध् भिस्=युद्भिः।

	जित्			युध्		
१	जित्	जितौ	जिता जितः	युत्	युधौ	युधा युधः
२	जितम्	,,	,,	युधम्	,,	,,
३	जिता	जिद्भ्याम्	जिद्भिः	युधा	युद्भ्याम्	युद्भिः

४	जिते	,,	जिद्भ्यः	युधे	,,	युद्भ्यः
५	जितः	,,	,,	युधः	,,	,,
६	,,	जितोः	जिताम्	,,	युधोः	युधाम्
७	जिति	,,	जित्सु	युधि	,,	युत्सु
सं०	जित्			युत्		

नपुंसक में ।

१,२, सं० ०जित्	०जिती	०जिन्ति

शेष पुल्लिङ्गवत् ।

अ अन्तवाले पच, नद, लोहकार आदि की रूपावलि देव की नाईं ।

६४—(क) इन् अन्तवाला स्थायिन् । स्वर परे होने पर अन्त्य व्यञ्जन उसमें जा मिलता है–स्थायिन्+औ=स्थायिनौ । व्यञ्जन परे होने पर न् का लोप हो जाता है स्थायिन् भ्याम्= स्थायि भ्याम् ।

प्रथमा के पुंल्लिङ्ग एकवचन में स्थायी, सम्बोधन में स्थायिन् ।

१	स्थायी,	स्थायिनौ०ना	स्थायिनः
२	स्थायिनम्	,,	,,
३	स्थायिना	स्थायिभ्याम्	स्थायिभिः
४	स्थायिने	,,	स्थायिभ्यः
५	स्थायिनः	,,	,,
६	,,	स्थायिनोः	स्थायिनाम्
७	स्थायिनि	,,	स्थायिषु
सं०	स्थायिन्		

नपुंसक १ २ स्थायि स्थायिनी स्थायीनि । सम्बोधन स्थायि, स्थायिन् ।

६५—तृ अन्त वालों को पहले पांच वचनों में वृद्धि होती है—होतृ औ=होतार् औ=होतारौ । प्रथमा के एक वचन में र् स् दोनों का लोप हो जाता है। होता र् स्=होता। सप्तमी के एक वचन में गुण, होतृ इ=होतर् इ=होतरि ।

१	होता	होतारौ होतारा	होतारः
२	होतारम्	,,	होतॄन्
३	होत्रा	होतृभ्याम्	होतृभिः
४	होत्रे	,,	होतृभ्यः
५	होतुः	,,	,,
६	,,	होत्रोः	होतॄणाम
७	होतरि	,,	होतृषु
सं०	होतः।		

ऋकारान्त सम्बन्धी शब्द जैसे पितृ, भ्रातृ आदि हैं उनको पांच वचनों में वृद्धि न होकर गुण होता है जैसे पिता पितरौ, पितरः पितरम्, पितरौ । शेष सारा होतृवत् । स्त्री-लिङ्ग मातृ का द्वितीया बहुवचन मातॄः होगा । इसी प्रकार 'ननान्द' आदि। हाँ स्वसृ के रूप होतृवत् होंगे द्वितीया बहुवचन स्वसॄः होगा ।

———

त्रयोविंशः पाठः ।

संस्कृत से भाषा	भाषा से संस्कृत
यजमानस्य पशून् पाहि ।	हरि अपने बन्धुओं की रक्षा करता है ।
विष्णो हव्यꣳ रक्ष ।	हे अग्ने हव्य की रक्षा कर ।
मातुराज्ञां पालयामि ।	पिता की आज्ञा का पालन करो ।
अग्नेस् तनूरसि ।	तू वायु का शरीर है ।
आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु ।	हमारी माताएं हमें शुद्ध करें ।
पृथिव्याः स्वर्गमारोहति ।	नदी से समुद्र में प्रवेश करता है ।
वसोः पवित्रमसि ।	वसुओं का प्रातः सवन होता है ।
न भ्राता भ्रातरं द्वेष्टि ।	मैं माता और पिता का सेवन करता हूं ।
न स्वसा स्वसारम् ।	

वेदाध्ययनम् ।

स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मि र्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि । सूर्यस्या वृतमन्वावर्ते (यजु २।२६)

तू स्वयम्भू है श्रेष्ठ रश्मि (किरण, प्रकाश) तू तेज का देने वाला है मुझे तेज दे । मैं सूर्य के मार्ग के अनुसार (प्रकाश फैलाता हुआ) चलूं ।

व्याकरण—स्वयम्भवतीति स्वयम्भूः । स्वयम् पूर्वक भूसे०स्वयम्भू होकर प्रथमा का एक वचन । वर्चोदा वर्चस् पूर्वक दा से कृत० आकर वर्चोदा प्रथमाका एक वचन वर्चोदाः ।

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।
सुमृडीका भवन्तु नः (यजु० ३३ । ७७)

जो अमृत (प्रजापति) के पुत्र हैं वे हमारे वचनों को सुनें, और हमारे लिए सुखदायी हों ।

व्याकरण—सूनवः—सूनु का प्रथमा का बहु वचन । शृण्वन्तु=सुनें । अमृतस्य अमृत के । नः=अस्माकम्=हमारी । नः=अस्मभ्यम्=हमारे लिए ।

चतुर्विंशः पाठः ।

व्याकरणम् (कृत् प्रत्यय)

६६—भाव में ये प्रत्यय आते हैं—

(क) अन=ध्या+अन=ध्यान । ज्ञा+अन=ज्ञान । गम्+अन=गमन । जीव+अन=जीवन भूष अन=भूषण । इस अन के परे होने पर गुण होता है । कृ अन=करण । मृ+अन=मरण ।

(ख) ति—भाव में आता है भू+ति=भूति । रा+ति=राति ।

६७—वर्गों के चौथे वर्ण से परे त् को ध् होता है और उस चौथे को तीसरा हो जाता है । बुध् ति=बुद् धि=बुद्धि । सिध् ति=सिद्धि । लभ् ति=लब्धि ।

(ख) अन्त्य न्, म् का लोप हो जाता है—मन् ति=मति । गम् ति=गति ।

६८—त=सकर्मकों से कर्म में और अकर्मकों से भाव वा कर्ता में त आता है । कृ+त=कृत । हृ+त=हृत ।

जि+त=जित । नी=नीत । शक्+त=शक्त । हृष्+त=हृष्ट । पुष्+त=पुष्ट ।

वर्गों के चौथे से परे त् को ध् और उस चौथे को तीसरा होता है—बुध् त=बुद्ध । सिध् त=सिद्ध । लभ् त=लब्ध ।

अन्त्य न् म् का लोप होता है—मन् त=मत । गम् त=गत ।

६९—सेटों से पूर्व 'इ' आजाता है—पठ्+त=पठ+इत=पठित । भाष् त=भाषित ।

(क) त प्रत्यय अकर्मकों से कर्ता में और सकर्मकों से कर्म में आता है। और ये शब्द विशेषण होते हैं। वृद्धः पुरुषो दण्डेन गच्छति । सिद्धमन्नमानय (तय्यार हुए अन्न को ला) । मूर्खः पठितं पाठं विस्मरति=मूर्ख पढ़े पाठ को भूल जाता है।

(ख) वाक्य के अन्त में क्रिया पद का भी काम देता है। मया वेदः पठितः । हरिणा किं कथितम् ।

पञ्चविंशः पाठः ।

६६—भाव और कर्म में होते हैं—तव्य, अनीय और य ।

(क) तव्य, अनीय, के परे होने पर गुण होता है ।

(ख) य परे होने पर कइयों को गुण और कईयों को वृद्धि होती है-कृ+तव्य=कर्तव्य। कृ+अनीय=करणीय । कृ+य (वृद्धि आर् होकर) कार्य=कार्य। विद्+य=वेद्य ।

(ग) सेट धातुओं से परे तव्य से पूर्व 'इ' भी लग जाता है। भाष्+तव्य=भाष् इतव्य=भाषितव्य । पठ तव्य=पठितव्य ।

ये शब्द विशेषण होते हैं प्रायः वाक्य के अन्त में क्रिया पद का काम देते हैं—मयाऽद्य वेदः पठनीयः। त्वया वनं गन्तव्यम्। तत्र त्वयेदं वाच्यम्।

(घ) ये तीनों प्रत्यय शक्ति और योग्यता अर्थ में भी आते हैं—

गम्य=पहुंचने को शक्य। स्तुत्य=स्तुति के योग्य।

६७—वर्तमानकाल वाचक (present participle)

(क) परस्मैपद का वर्तमान में जो अन्ति का रूप होता है, उस का 'इ' हटादें, तो वर्तमानकाल वाचक नाम बन जाता है। जैसे पचन्ति=पचन्त्, भवन्ति=भवन्त्, दीव्यन्ति=दीव्यन्त्।

इन नामों का त् से पूर्वला न् पुलिङ्ग में पांच वचनों में बना रहता है अन्यत्र लोप हो जाता है। रूपावलि इस प्रकार होगी—

१	पचन्	पचन्तौ, न्ता	पचन्तः
२	पचन्तम्	,,	पचतः
३	पचता	पचद्भ्याम्	पचद्भिः
४	पचते	,,	पचद्भ्यः
५	पचतः	,,	,,
६	,,	पचतोः	पचताम्
७	पचति	,,	पचत्सु

नपुंसक में पचत् पचती पचन्ति

शेष पुंलिङ्ग वत्। स्त्री लिङ्ग में अन्त्य में ई प्रत्यय लगकर पचन्ती नदीवत्।

वर्तमान के बहुवचन ददति, जाग्रति इत्यादि का 'इ'

हटाने से ददत्, जाग्रत् बनेंगे । इनकी रूपावलि ददत् ददतौ ददतः इत्यादि होगी ।

(ख) मान, आन-आत्मने पदी धातुओं से सार्वधातुक का कार्य होकर उदात्तवर्ग से मान और अनुदात्त वर्ग से आन होता है ।

उदात्त वर्ग-वृध्+अ=वर्ध+मान—वर्धमान । डी (दिवा०) से डीयमान । मृ (तु०) से म्रियमाण । अनुदात्त वर्ग से—अश्नुवान, कुर्वाण, इत्यादि । रूपावलि पुलिङ्ग में देववत्, नपुँसक में फलवत् स्त्री लिङ्ग में अन्त में 'आ' आकर शिवा वत् होती है ।

षड्विंशः पाठः ।

वेदाध्ययनम् ।

अत्यावश्यक नियमों में से बहुत से आपको बतला दिये हैं आगे व्याकरण के समझने में ये बहुत काम देंगे ही किन्तु इन थोड़े से नियमों के आश्रय भी आप बहुत कुछ समझने के योग्य बन गये हैं, इस लिए अब आपको ऋग्वेद का प्रथम सूक्त पूरा क्रम से पढ़ाते हैं ।

ऋग्वेद का पता देने के दो क्रम हैं । एक मण्डल सूक्त और मन्त्र का । यही सरल होने से अधिक प्रचलित है । दूसरा अष्टक, अध्याय वर्ग और मन्त्र का । मण्डल दस हैं । प्रत्येक मंडल में कई सूक्त और प्रत्येक सूक्त में कुछ मन्त्र हैं । अष्टक में अध्याय, अध्यायों में सूक्त, सूक्तों में वर्ग वर्गों में मन्त्र बटे हैं । प्रत्येक सूक्त के ऊपर उसका ऋषि, छन्द और देवता अलग लिखा रहता है । मन्त्रों वा मन्त्र का द्रष्टा उसका ऋषि

कहलाता है। छन्द जिस में सूक्त वा मन्त्र गाया जाता है। देवता जिस विषय का उस में वर्णन है।

ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १

इस सूक्त का ऋषि विश्वामित्र का पुत्र मधुछन्दा (मधुछन्दस्) है। छन्द (छन्दस्) गायत्री है, जो ऋग्वेद के सातों छन्दों में सब से छोटा है। ऋग्वेद की लग भग एक चौथाई ऋचाएं इसी छन्द में हैं। शेष सारे छन्द चार चार पाद के हैं। केवल गायत्री ही तीन पाद का छन्द है। इस के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं। पहले दो पाद मिलकर पूर्वार्ध और तीसरा एक ही पाद उत्तरार्ध होता है। प्रत्येक पाद के अन्तिम चार अक्षर प्रायः लघु, गुरु, लघु, गुरु (वा लघु) होते हैं।

ऋचाओं में प्रथम पाद की दूसरे के साथ और तीसरे की चौथे के साथ संहिता मानी जाती है, इस लिये उन में सन्धि हो जाती है। पूर्वार्ध की उत्तरार्ध के साथ संहिता नहीं होती।

देवता इस सूक्त का अग्नि है।

ओ३म्—अग्निमीळे पुरोहितं।

यज्ञस्य देव मृत्विजम्

होतारं रत्नधातमम् ।१।

पदपाठ—अग्निम् । ईळे । पुरःऽहितम् । यज्ञस्य । देवम् । ऋत्विजम् । होतारम् । रत्नधातमम् ।

अर्थः—मैं अग्नि की स्तुति करता हूं जो पुरोहित है । यज्ञ का देवता है, ऋत्विज् है, होता (बुलाने वाला) है, सब से बढ़ कर रत्नों का दाता है ।

भाष्य—गति जड़ चेतन सब में अग्नि से है, प्रकाश अग्नि से है, जीवन भी सर्वत्र अग्नि से है । अग्नि के बिना न गति, न प्रकाश, न जीवन, कुछ भी नहीं रहता । ऐसी महिमा वाली अग्नि का एक अन्तरात्मा है, जो इस के अन्दर बैठ कर इसे शक्ति देरहा है, प्रकाश स्वरूप है और जीवन दाता है । यह अग्नि उस की एक दिव्य विभूति है । इस को उस अन्तरात्मा की विभूति के रूप में देखते हुए कहा है 'अग्निमीळे पुरोहितम्' । पुरोहित आगे रक्खा हुआ, लोक परलोक के मार्ग को दिखलाने वाला । प्रकाश हमें सीधा मार्ग दिखलाता है । अनिष्ट से बचाता और इष्ट की ओर लेजाता है । ब्राह्मण पुरोहित भी इस अग्नि (प्रकाश) का अनुसरण करने से पुरोहित बनता है । वह जिस कुल का पुरोहित बनता है । उस कुल के प्रत्येक जन को लो परलोक का सीधा मार्ग दिखलाता है । अत एव कहा है–'आग्नेयो वै ब्राह्मणः' क्योंकि ब्राह्मण ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशमान होता है । जिस देश में ऐसे ब्राह्मण पुरोहित होते हैं, वह देश सारी सम्पत्तियों

से सम्पन्न होता है, अत एव वेद में पुरोहित के सच्चे उत्साह को इस जाज्वल्यमान वाणी से प्रकाशित किया है—वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः । (यजु १९ । २३) हम देश में पुरोहित हुए जागें ।

ऋत्विज्–ऋतु+यज् (भ्वा-उ०) से-ठीक समय पर यज्ञ करने वाला । अग्नि बेमालूम इस पृथिवी में यज्ञ कर रहा है । कहीं जल से भाप बना रहा है, कहीं ओषधियों से रस, कहीं फूलों से सुगन्ध वायु में फैला रहा है । सर्वत्र सूक्ष्म रस को वायु मण्डल में फैलाने का काम अग्नि कर रहा है और सर्वत्र जीवन दे रहा है ।

अग्नि होता है, देवताओं को बुलाता है । जिस देश में प्रकाश बढता है, वहां देवता रमण करते हैं ।

व्याकरण—अग्नि–अग्+नि । अग्–गति वा धकेलना (भ्वा० प०) स्वयं गति शील और दूसरों को गति में लाने वाला है । अग्निम् द्विती० एक व० (देखो ४८) ईड् स्तुति करना (अदा० आ०) ईड्+ए=ईडे (उत्तम० एक व०)=मैं स्तुति करता हूं । ईडे= ईळे । दो स्वरों के मध्य में आने से ड् ळ् होगया । पुरस्=आगे (अव्यय) । हित=धा+त=(धा को हि)=हित=रक्खा हुआ । आगे रक्खा हुआ=नेता । पुरः हित=पुरोहित (४६ घ, आ०) द्विती० एक० । पुरोहितम् । यज्ञ–यज–पूजना (भ्वा० उ०)+न=यज्+न= यज्ञ । यज्ञस्य, ष० एक० । ऋत्विज्=ऋतु+यज्=ऋतु+इज् (य को इ सम्प्रसारण)=ऋत्विज । द्वि० एक० ऋत्विज् + अम्=ऋत्विजम् होतृ+अम्=होतारम् । धा–धा–रखना (जु० उ०)+०=धा= रखने वाला, जिसके पास है देने के लिये है । धा+तम=धातम । सब से बढ़ कर दाता रत्न+धातम=रत्नों का सब से बड़ा दाता । रत्नधातमम् द्वि० एक० ।

स्वर सञ्चार (१) प्रधान स्वर उदात्त है। एक पद में एक ही उदात्त होता है। (२) उसको छोड़ शेष सब अनुदात्त होजाते हैं (३) उदात्त से परला अनुदात्त स्वरित हो जाता है (४) स्वरित से परे जितने अनुदात्त हों वे एक श्रुति हो जाते हैं। (५) प्रकृति वा अंग का अन्त्य स्वर उदात्त होता है, प्रत्यय का आदि। प्रकृति प्रत्यय के मेल में प्रत्यय स्वर बलवान् होता है। (६) नाम विभक्तियां सामान्यतः अनुदात्त रहती है। आख्यात विभक्तियों के नियम साथ साथ दे दिये हैं (७) सम्बोधन आद्युदात्त होता है (८) सम्बोधन वा क्रिया पद जो पाद के आदि में न हों, सर्वानुदात्त होते हैं। इसके अनुसार अग्निम् अन्तोदात्त (५) अग्नि+अम्=अग्निम् अन्तोदात्त (६) ईळे सर्वानुदात्त (७) पुरस् अन्तोदात्त। हित के साथ समास में इसी का स्वर प्रधान रहने से पु हि त अनुदात्त (२) उदात्त 'रो' से परे हि स्वरित(३)त एक श्रुति(४)-पुरोहितम्। यज्ञ अन्तोदात्त (५) स्य अनुदात्त (६) को उदात्त से परे स्वरित यज्ञस्य। देव अन्तोदात्त (५) देवम् अन्तोदात्त (६) ऋत्विज् अन्तोदात्त। ऋत्विज्+अम्=ऋत्विजम् ज स्वरित (३) होतारम्= बुलाने के स्वभाव वाला। स्वभाव अर्थ में तृ वाला नाम आद्युदात्त होता हैं। सो हो उदात्त। ता र अनुदात्त में से ता को स्वरित (३) र को एक श्रुति (४)। रत्नऽधातमम्। धा उदात्त। तर,तम सर्वानुदात्त होते हैं। सो उदात्त से परे तम का त स्वरित (३) म (एक श्रुति)।

संहितास्वर-ईळे के ई को स्वरित (३) ळे को एक श्रुति (४) होतारं रत्न धातमम् में हो से परे रं र को एक श्रुति (४) त्न से परे धा उदात्त है इसलिए उसे एक श्रुति न हुआ।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।
स देवाँ एह वक्षति ॥२॥

पदपाठ—अग्निः । पूर्वेभिः । ऋषिऽभिः । ईड्यः । नूतनैः । उत । सः । देवान् । आ । इह । वक्षति ।

अर्थ—अग्नि पहले ऋषियों से और वर्तमान (ऋषियों) से स्तुति के योग्य है, वह देवताओं को यहां लावे।

भाष्य—ऋषि पहुंचे हुए साक्षात् देखने वाले। जिन्होंने अग्नि के बाह्यरूप को और उस के अन्तरात्मा परमात्मा को साक्षात् देखा है।

व्याकरण—व्यञ्जनादि (भ्याम्, भिस्, भ्यस्, सु) विभक्तियों से पूर्व नाम यदि अविकृतरूप में हो तो पदपाठ में उसका अवग्रह दिखलाया जाता है। सो ऋषिभिः=ऋषि ऽभिः पढ़ा गया। नाम के रूप में विकार हो तब नहीं जैसे पूर्वेभिः। ईड्यः इस ड को ळ न हुआ क्योंकि परे व्यञ्जन (य्) है न कि स्वर। पूर्वे-

भिर् ऋषिभिर् ईड्यः विसर्ग को र् (४६ ख) नूतनैर् उत (४६ ख) सः=स (४७) देवान् एह=देवाँ एह (४५) आ+इह=एह (१५ क)।

स्वर—अग्निः अन्तोदात्त। पूर्व और ऋषि शब्द आद्युदात्त हैं सो 'पूर्वेभिः। ऋषिभिः, में उदात्त से परे वें और षि स्वरित हुए। स्वरित से परे भिः एक श्रुति। ईड्यः सदा आद्युदात्त होता है। ई उदात्त से परे ड्यः स्वरित हुआ। नूतनैः, पूर्वेभिः की नाईं। निपात आद्युदात्त होते हैं, पर उत, इह अन्तोदात्त हैं। वक्षति सर्वानुदात्त (८)।

संहिता में 'ऋषिभिरीड्यो' में भिः एक श्रुति न हुआ, क्योंकि उस से परे ई उदात्त है और ड्यो स्वरित न हुआ क्योंकि उस से परे नू उदात्त है 'एह वक्षति' में आ इह=एह उदात्त के साथ एकादेश उदात्त हुआ और ह उदात्त से परे व अनुदात्त स्वरित हो गया। स्वरित से परे 'क्ष ति' एक श्रुति हुआ।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरवत्तमम्।

पद०—अग्निना। रयिम्। अश्नवत्। पोषम्।

एव । दिवेऽदिवे । यशसम् । वीरवत्ऽतमम् ।

अर्थ—अग्नि के द्वारा (वा साथ) ऐश्वर्य को प्राप्त करे, जो दिन दिन पुष्टि देने वाला हो, यशवाला हो (और) सब से बढ़ कर वीरों वाला हो ।

भाष्य—परमेश्वर के साथ रह कर न कि उस से विमुख होकर प्रकाशमय और उत्साह भरे जीवन (अग्नि) के साथ ऐश्वर्य को प्राप्त करो । ऐसा ऐश्वर्य जो दिन प्रतिदिन पुष्टि ही दे, प्रमाद में कभी न डाले । तुम्हें यशस्वी और तेजस्वी बनाए और तुम्हारे पुत्र पौत्रों और भृत्यवर्ग को ऐसा वीर बनाए, जिन की बराबरी दूसरे न कर सकें ।

व्याकरण—'अग्निना' तृतीया एक० उदात्त से परे अनुदात्त ना स्वरित हुआ । रयिम् अन्तोदात्त । अश्नवत्—अश्-पाना (स्वा० प्रेरणा प्र० पु० एक०) सर्वानुदात्त (८) पोष आद्युदात्त । 'पोषम्' उदात्त से परे अनुदात्त ष स्वरित हुआ ष । एव अन्तोदात्त । दिवेऽदिवे-समास है । इस में पूर्वपद सदा अन्तोदात्त होता है उस से परे अनुदात्त दि को स्वरित (३) वे को एकश्रुति (८) यशसम् । यशस् यश का नाम हो तो नपुंसक आद्युदात्त होता है 'यशस्' । यश वाले का नाम (विशेषण) हो तो त्रिलिङ्ग अन्तोदात्त होता है यशस् । यशस् अम्= यशसम्, उदात्त श से परे स स्वरित हुआ । वीर से परे वत् और

तम अनुदात्त प्रत्यय हैं सो अन्तोदात्त वीर से परे व स्वरित (३) उस से परे तमम् एक श्रुति (८) वीरवत्तमम् ।

संहिता में—'रयिमश्नवत्' उदात्त से परे म स्वरित (३)

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि ।

स इद् देवेषु गच्छति ।४।

अग्ने । यम् । यज्ञम् । अध्वरम् । विश्वतः

परिऽभूः । असि । सः । इत् । देवेषु । गच्छति ।

हे अग्ने ! जिस अकुटिल (निर्दोष) यज्ञ को तू सब ओर से घेरने वाला होता है, वह ही देवताओं में पहुंचता है ।

भाष्य—अग्नि जिस यज्ञ को सब ओर से घेर कर रक्षा करते हैं, वह निःसन्देह देवताओं में पहुंचता है, देवताओं के बल को बढ़ाता है ।

व्याकरण—अग्ने । सम्बोधन आद्युदात्त । उदात्त से परे अनुदात्त ग्ने को स्वरित (३) । यम् उदात्त यज्ञम् अन्तोदात्त । अध्वरम्, अन्तोदात्त । अर्थ अकुटिल, शुद्ध भाव से किये हुए । विश्वतः । पञ्चम्यर्थ तस् प्रत्यय । सब ओर से । श्व उदात्त होने से परे त स्वरित हुआ । परिऽभूः, भू होना (भ्वा० प०) से ०कृत् । परि उपसर्ग होने से आद्युदात्त ऽभू के साथ समास

हुआ। तब समास में कृदन्त उत्तरपद के बलवान् होने से परि अनुदात्त हुआ। असि। प्रकृति स्वर अ उदात्त होने से परे सि अनुदात्त को स्वरित हुआ। यहां क्रियापद सर्वानुदात्त न हुआ क्योंकि यत् के प्रयोग से परे क्रियापद सर्वानुदात्त नहीं होता। यहां यम यह यत् का प्रयोग है। सः। इत्=ही। उदात्त है। देवेषु। देव अन्तोदात्त से परे 'षु' अनुदात्त स्वरित हुआ। गच्छति क्रियापद सर्वानुदात्त।

संहिता में—अग्ने में 'ने' को स्वरित न हुआ, उस से परे 'यं' उदात्त है। 'यज्ञमध्वरम्' में ज्ञ से परे म को स्वरित 'विश्वतः परि' में तः स्वरित से परे प एक श्रुति हुआ। षु स्वरित से परे गच्छति एक श्रुति हुआ।

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः देवो देवेभिरागमत्॥५॥

अग्निः। होता। कविऽक्रतुः। सत्यः। चित्रश्रवःऽतमः। देवः। देवेभिः। आ। गमत्।

अर्थ—अग्नि जो (देवताओं का) बुलाने वाला, ऋषियों जैसे संकल्पों वाला, सच्चा, सब से बढ़ कर चमकते हुए यश वाला है, वह देव देवताओं के साथ (इस यज्ञ में) आवे *।

---

* 'आवे' इत्यादि शब्दों से हम अपना अभिप्राय प्रकट करते हैं अर्थात् हमारे कार्यों में वह आप खड़ा होकर उन को पूरा

व्याकरण—अग्निः अन्तोदात्त । होता आद्युदात्त । उदात्त से परे ता अनुदात्त को स्वरित हुआ । कविऽक्रतुः और चित्रऽश्रवस्‌ दोनों बहुव्रीहि हैं । बहुव्रीहि में पूर्वपद का स्वर रहता है । सो कवि और चित्र अन्तोदात्त होने से उन से परे क्र और श्र स्वरित हुए, उन से परे तु और वस्तमः एक श्रुति हुए । 'देवैः, देवेभिः' पूर्ववत् । आ उदात्त । गमत् क्रियापद सर्वानुदात्त ।

संहिता में—देवेभिः में भिः स्वरित न हुआ क्योंकि परे आ उदात्त है । आ से परे ग स्वरित हुआ और उस से परे म एक श्रुति हुआ ।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।

तवेत् तत्सत्यमङ्गिरः ।६।

पद०--यत् । अङ्ग । दाशुषे । त्वम् । अग्ने । भद्रम् । करिष्यसि । तव । इत् । तत् । सत्यम् । अङ्गिरः ।

करे । यह अभिप्राय है । भट्ट भास्कर लिखते हैं—न हि देवो विश्वात्मा कुतश्चिदायाति न क्वचिद् याति, स्तुतिः खल्वियं क्रियते स्वाभिलषित-सम्पादन रूपा-याहि, आयाहि, उत्तिष्ठ, प्रत्यातनुष्व, ऊर्ध्वो भव इत्यादिस्वरूपा, सर्वान्तर्यामी देव न कहीं से आता है न कहीं जाता है, किन्तु अपने मनोरथों की सिद्धि के योग्य ऐसे शब्दों से केवल स्तुति की जाती है—जाओ, आओ, उठो, फैलाओ ऊपर हो इत्यादि ।

अर्थ—ठीक हे अग्ने वह कल्याण जो तू देने वाले का करेगा, हे अङ्गिरा वह तेरी एक निःसन्देह सचाई है।

भाष्य—भद्र=कल्याण। यद्वै पुरुषस्य वित्तं तद् भद्रं गृहा भद्रं प्रजा भद्रं पशवो भद्रमिति—धन पुरुष का भद्र है घर भद्र हैं सन्तान भद्र हैं पशु भद्र हैं। लोक में उस का अवश्य कल्याण होता है-घर धन प्रजा पशु सब कुछ उस को मिलता है, जो परमात्मा के नाम पर दान देता है। दान पीछे कल्याण इस लोकोक्ति का यह मन्त्र मूल है।

व्याकरण—अङ्ग निपात अन्तोदात्त है। दाशुषे, दाश्-(देना)+वसु=दाश्वसु+ए=दाशुषे। वसु प्रत्यय उदात्त से परे षे स्वरित हुआ। करिष्यसि भविष्यत्-काल मध्यम पु० एकवचन स्य उदात्त होने से परला सि स्वरित हुआ अङ्गिरः सम्बोधन आदि में न होने से सर्वानुदात्त हुआ।

संहिता में दाशुषे में षे अनुदात्त रहा क्योंकि इससे परे त्वम् उदात्त है। भद्रं के द्रं उदात्त से परे क अनुदात्त स्वरित हुआ। 'सत्य मङ्गिरः' में त्य उदात्त से परे म अनुदात्त को स्वरित। 'सत्य मङ्गिरः' में त्य उदात्त से परे म अनुदात्त को स्वरित और उस स्वरित से परे अङ्गिरः एक श्रुति हुआ।

अगले तीन मन्त्रों में व्याकरण के नियमों पर स्वयं ध्यान दो।

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि॥७॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।
वर्धमानं स्वे दमे ॥८॥

पद०—उप। त्वा। अग्ने। दिवेऽदिवे। दोषाऽवस्तः। धिया। वयम्। नमः। भरन्तः। आ। इमसि।

राजन्तम्। अध्वराणाम्। गोपाम्। ऋतस्य। दीदिविम्। वर्धमानम्। स्वे। दमे।

अर्थ—रात्रि (अन्धेरे) में चमक ने वाले हे अग्ने! प्रति दिन भक्ति के साथ नमस्कार करते हुए हम तेरे पास आते हैं (तेरी शरण लेते हैं) ॥७॥

तू जो यज्ञों पर शासन करने वाला, ऋत का रखवाला, अत्यन्त चमकने वाला अपने घर (विश्व वा यज्ञशाला) में बढ़ता है।

भाष्य—ऋत, अटल नियम। इस विश्व में सर्वत्र अटल नियम काम कर रहे हैं। आध्यात्मिक आधिदैविक सारी घटनाएँ इन्हीं नियमों के अनुसार होती हैं। इन्हीं नियमों को सृष्टि नियम (Laws of Nature) कहते हैं। धर्म (Moral laws) और कर्मफल भी ऋत है। जो जैसा बीजता है वैसा काटता है। इस सचाई के रक्षक परमात्मा हैं और सारे विश्व

में जो जो घटनाएँ हो रही हैं, वे जिस अटल नियम के अधीन हो रही हैं उस नियम के रक्षक परमात्मा हैं।

स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये ।९।

पद०—सः। नः। पिताऽइव। सूनवे। अग्ने। सुऽउपायनः। भव। सच स्व। नः। स्वस्तये।

अर्थ—सो तू हे अग्ने हमारे पहुंचने के लिए आसान हो जैसे पिता पुत्र के लिए होता है और हमारे कल्याण के लिए हमारे सङ्ग मिले रहो।

भाष्य—पुत्र जब चाहे पिता के पास जा सकता है, यही दावा हमें अपने इष्टदेव के साथ होना चाहिए। हम जब चाहें उस की शरण ले सकें। हमारा कल्याण तभी हो सकता है कि हमारा इष्टदेव हमारे अङ्ग सङ्ग हो। वह हमारे साथ ऐसा मिला हुआ हो कि हमारे और उन के बीच में कोई न आ सके। कहते हैं कि जब पुरुष अग्निहोत्र कर रहा हो, तो उस के और अग्नि के बीच में कोई न आवे। यह सच है पर लोग इस का तात्पर्य समझने में भूलते हैं। शतपथ ब्राह्मण इस भूल को हटाता हुआ कहता है "न हवा अस्यैतं कश्चनान्तरेणैति यावज्जीवति योऽस्यान्तरात्मन्नग्निराहितो भवति तस्मात्तन्नाद्रियेत" (श० ब्रा०

२।२।२।१७) जब तक जीता है इस के इस अग्नि के बीच में कोई नहीं जाता है जो यह अग्निं इस के अन्तरात्मा में स्थित है। इस लिए उस (बाह्य अग्नि) की परवाह न करे । अर्थात् बाह्य अग्नि को स्थापित करके उस अग्नि के अग्नि को अन्तरात्मा में स्थापित करो । यही अग्नि देव की सच्ची उपासना है कि वे हमारे अन्तरात्मा में स्थापित हो जावें और हमारे और उन के बीच में कोई न आ सके ।

पं० राजाराम कृत

उपनिषदों, शास्त्रों के सरल, सुबोध, प्रामाणिक

भाषानुवाद वेदों के संग्रह

ार्य जीवन	१॥)	४—स्वाध्याय यज्ञ	१)
ैव्य जीवन	॥)	५—पञ्च महायज्ञ पद्धति	।–)
ार्य दर्शन	१॥)		

ब्रह्मविद्या के ग्रन्थ (उपनिषदें और गीता)

उपनिषद्	≡)	ऐतरेय	≡)
,,	≡)	छान्दोग्य	२।)
,,	।≡)	बृहदारण्यक	२।)
,,	।–)	श्वेताश्वतर	।–)
क, माण्डूक्य	।=)	उपनिषदों की भूमिका	।–)
तै रीय	॥)		

उपनिषदों की शिक्षा—इस में बड़े विस्तार के साथ हर एक विषय पर सारी उपनिषदों के प्रमाण संग्रह किये गये हैं केवल २।)

श्रीमद्भगवद्गीता—पद पद का अर्थ, अन्वयार्थ और सविस्तर भाष्य सहित २।) गीता की शिक्षा ।–)

सटीक गीता गुटका—रेशमी जिल्द ॥)

इतिहास के ग्रन्थ

श्रीवाल्मीकि रामायण—इस पर ७००) इनाम मिला है ६।)

महाभारत—दो जिल्द १२)

शङ्कराचार्य और कुमारिलभट्ट का जीवन चरित्र ॥।)

नल दमयन्ती ।)

दर्शन शास्त्र (सविस्तर भाष्य सहित)

योग दर्शन	१॥)
सांख्यशास्त्र	॥।)
वेदान्त दर्शन	४)
न्यायदर्शन	४)
वैशेषिक दर्शन	१॥)
नव दर्शन संग्रह	१।)
न्याय प्रवेशिका	॥=)

स्मृति शास्त्र और उपदेश

शुद्धि शास्त्र ॥=)
शास्त्र रहस्य प्रथम भाग ॥) द्वितीय भाग ॥।)
मनुस्मृति—सविस्तर टीका सहित ३।)
उपदेश सप्तक ॥-)
प्रार्थना पुस्तक -)॥
पारस्कर गृह्यसूत्र १॥।)

पुस्तकें मिलने का पता—

आर्षग्रन्थावलि लाहौर ।